राजस्थान साहित्य-धारा ४

पूर्ण-कलश



डॉ० रांगेय राघव



राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर (राज०)

प्रकाशक
डॉ० मोतीलाल मेनारिया
संचालक
राजस्थान साहित्य अकादमी
उदयपुर।

प्रथम संस्करण
१९६१

मूल्य
दो रुपये पचहत्तर नये पैसे

मुद्रक
जगन्नाथ यादव
अध्यक्ष
केशव आर्ट प्रिण्टर्स
अजमेर।

प्रकाशकीय

डॉ० रांगेय राघव हिन्दी के उन गिने-चुने विद्वान साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने भारतीय और यूरोपीय दोनों ही साहित्यों और चिन्तन-धाराओं का सम्यक् अध्ययन किया है।

आपकी नवीनतम कृति 'पूर्ण-कलश' आपके समक्ष प्रस्तुत है।

पूर्ण-कलश में मनुष्य की चेतना के विभिन्न स्तरों को खोजा गया है। हीब्रू, फारसी, संस्कृत, चीनी, अंग्रेजी आदि स्रोतों में उपनिषदों के गहन चिन्तन की झलक को उपस्थित किया गया है, क्योंकि लेखक को मनुष्य की ज्ञान पिपासा की यात्रा में सत्य के अनेक रूप दिखाई दिये हैं।

इन रूपों की जो काव्यात्मक अनुभूति हुई है और दर्शन ने जहाँ मानस चक्षुओं से दिखाई देने वाले सौन्दर्य को आत्मसात किया है, उस महानता के रूप को समेटकर संस्कृति की विराट् भूमि को प्रस्तुत करने की चेष्टा की है।

इसलिये 'पूर्ण कलश' मनुष्य को उदात्त करने वाला एक सशक्त कविता संग्रह है।

दो शब्द

घड़ा ! खाली बजता है, भरा छलक सकता है, उसके छींटे नीचे गिर सकते हैं। और मानव ने इन छींटों को ही देखा है, क्योंकि वह कभी इतना शक्ति ही नहीं पा सका कि उसके भीतर देख सके, उसके पूर्णत्व का अंकन कर सके।

मनुष्य की सौंदर्य की जिज्ञासा उसके सत्य का ही अन्वेषण बनकर बार-बार प्रगट हुई है। एक स्थल ऐसा है जैसा मानव सार्वभौम और सार्वकालिक होने का महान् स्वप्न देखने की चेष्टा करता रहा है। वह प्रयत्न किसी एक सीमा के भीतर घिरा हुआ नहीं मिलता, बल्कि हम प्रायः सर्वत्र ही मिल जाता है।

मैंने उसकी खोज की है और उन्हें एक-सूत्रता में उपस्थित करने की चेष्टा की है।

यहाँ मैंने पहले भारतीय मनीषा के उद्गारों को प्रस्तुत किया है। फिर मैंने जहाँ-तहाँ प्राचीन और अर्वाचीन ग्रंथों के पृष्ठ वैसे ही उलट डाले। मैं यह देखकर आश्चर्य-चकित रह गया कि मनुष्य के सारे व्यवधानों के ऊपर, सभ्यता, संस्कृति और इतर भेदों के ऊपर काल के व्यापक प्रसार की गरिमा घटानेवाली एक 'समता' थी, 'एकरसता' विद्यमान थी। वह महत्तर मानव को उपस्थित करने की एक ऐसी बलवती कामना थी, जो मानो सब प्रकार के बंधनों को दूर कर देना चाहती थी।

और मैंने अनुभव किया कि इस भूमि पर आने के बाद भाषा का भी भेद पार हो जाता था। काव्य जब तक साहित्य मात्र का शृंगार बना रहता है, तब तक उसमें अभिव्यक्ति का बाह्य रूप अर्थात् भाषा ही प्रधान होती है, किंतु एक स्थल ऐसा आता है जब काव्य जीवन की चेतना का प्रतिनिधि बन जाता है, तब भावों की समष्टि अन्तःसत्य का उद्घाटन करने लगती है, और बाह्य की प्रधानता का महत्त्व कम हो जाता है। जब मुझे यह दृष्टि मिली तब मैंने निमित्त रूप से देखा कि यह सत्य शतशत किरणों के रूप में मुखरित हो रहा था। जिस प्रकार

सूय की किरणो के अनेक रग हैं पर उनका मूल 'तप' है, 'आलोक' है, जिसमें लय हो जाने पर रग नही दीखते, उसी प्रकार भाव-सृष्टि मे भी एक 'तप' है जो सम्वेदना है, एव 'आलोक' है जो सत्य का परम दर्शन है। मैंने उसी को अपनाने की चेष्टा की। उसी नाते मैंने अग्रेजी, चीनी, मिस्री, अरबी, सस्कृत, हीब्रू और फारसी भाषाओ की कविताए चुनीं और उपनिषदो तथा वेदों के प्रेरणा-बिन्दु देखे और दाना का सावभौम सामाजस्य देखा। और बाद मे जब सहृदया को पढकर व अनुवाद सुनाये तो जानकारा ने यह कहकर बढावा दिया कि अनुवाद मौलिक रचनाओ जैसे लगते हैं, अपने बाह्यरूपेण ही नहीं, वरन् इसलिय भी कि उनका कथ्य उनके प्रस्तुतीकरण से भी कही बडा था।

मैंने अपने चयन में जीवन की विविधताओ को लेने की चेष्टा की है। इसलिये 'बधन' म सामाजिक रूढि का तिरस्कार है। उसके बाद की चीनी कविता मे भी सामाजिक विषमता का ही चित्र है। जन्म और प्रेम दोना ही यदि बन्दी हैं तो मनुष्य का मौलिक सुख कहाँ है? शेष जिज्ञासाए मानव की शाश्वत भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। जिज्ञासु पाठको को एक तुलनात्मक दृष्टि तो मिलगी ही, एक नयी भावभूमि भी मिलेगी, जिसमे समय मानव काल की दूरियो को लाँघ कर चलता हुआ दिखाई देगा।

वेर,

वाया-बयाना (भरतपुर) —रागेय राघव

काव्य

काव्य जीवन की विविध जिज्ञासाओं की पूर्ति की साधना है।

आदिम काल से आज तक जिन कवियों ने मनुष्य के व्यापक सम्बन्धों को अपनी अनुभूतियों मे गहराई तक उतार लिया था, वे उन भावनाओं को जन्म दे गये जो कालान्तर मे धर्म के नाम से विख्यात हुई। उनमे कुछ इतना गहन, इतना मार्मिक और इतना प्रेरणाप्रद था, कि उनकी शाश्वत ज्योति जीवन का ही अग बन गई।

जो मनोरजन करके उदात्ततम बनाता है, एक सीमा के परे वह ऐसे स्थल पर पहुँच जाता है, जहाँ उस उदात्त में अपना लय कर देना मनुष्य के जीवन की कामना बन जाती है।

जो उस तक पहुँच सकता है, वही आनंद की पहली झलक को देखकर प्रणाम करने की चेतना को भी जान लेता है।

•

कविताएँ			पृष्ठ
[illegible]	उपनिषद् कविता		१
१ [illegible]	[illegible] कविता	[illegible]	३
[illegible]	उपनिषद् कविता		११
२ गुलाब की [illegible]	[illegible] कविता	[illegible]	२१
[illegible]	[illegible] कविता		२६
३ [illegible]	[illegible] कविता	[illegible]	२६
विराग	उपनिषद् कविता		३८
४ [illegible]	[illegible] कविता	[illegible]	३६
[illegible]	उपनिषद् कविता		४६
५ [illegible]	[illegible] कविता	[illegible]	४७
[illegible]	उपनिषद् कविता		६७
६ मधु [illegible]	[illegible] कविता	[illegible]	६८
[illegible]	उपनिषद् कविता		८४
७ रहस्यमय [illegible]	[illegible] कविता	[illegible]	८५
[illegible]	उपनिषद् कविता		१००
८ शैशव स्मृति से अमरता का सन्देश	अंग्रेजी कविता	विलियम वर्ड्सवर्थ	१०१
उपसंहार	वैदिक कविता		११४

•

भूमिका

निश्चय जो भूमा है, सुख है,
नहीं अल्प में सुख मिल पाता,
सुख भूमा है, उसकी ही तुम
जिज्ञासा नित करो हृदय म ।

जहाँ और कुछ नहीं देखता
नहीं जानता और न सुनता
वह भूमा है,
जहाँ और देखता, जानता,
सुन लेता है,
वही अल्प है ।
जो भूमा है वही अमृत है,
जो है अल्प, मर्त्य है वह ही ।

[छांदोग्योपनिषद् ७।२३-२४]

मृत्यु और अमृत, और अमृत का पर्य्याय परमात्मा मानव के मन की जिज्ञासा का विषय अनादिकाल से ही रहते चले आये हैं। हमारे वैदिक

एकांतवास

(विलियम वर्ड्सवर्थ)



मैं मनुज, प्रकृति, मानव जीवन
के बारे में सोचा करता,
बहुधा ही देखा करता हूँ, चिंता-निमग्न
एकांत निभृत म जग उठती मेरे सम्मुख
कल्पना अनेकों सुंदरतर
पावन सुख की अनुभूति लिये रहती कोमल
दुख की छाया की रेखा भी आती न पास।
चेतन हो उठता हूँ, विचार ऐसे निहार
औ' मीठी स्मृतियाँ घिर घिर आती है उदार
मन म भरती सतोप तृप्ति
या आत्मा को करती उदात्त उन्नद्ध स्वय
इस मत्य-त्रास मे असत् और सत्
रही तोल !

आयगे ऐसे भाव, जहाँ से भी मुझमे,
इस वाह्य-व्यवस्था के दवासा से समुद्भूत
या स्वानुभूति उद्रेकमयी आत्मा मे से

मेरे छंदो मे बोल उठेंगे बार बार—
आशा, सुन्दरता, प्रेम, सत्य, गौरव अपार
औ' अवसादो का भय श्रद्धा से
होजायेगा दूर दूर,
मैं गाऊँगा
उस दिव्य सांत्वना के बारे मे मुखरित हो
जो पीडा को करती विलीन।
वह नैतिक बल, मेधा-प्रसार,
सम्पूर्ण लोक मे जो भर देगा अमित हृप
बहुजन हिताय,
जिसमे रक्षित व्याघातहीन होगा निश्छल
रे व्यक्ति-मनस का प्रिय-नीरव-एकान्त-शान्त
केवल अन्तश्चेतन का ही है जहां राज्य,
मैं गाऊँगा
औ' सब पर जो करते शासन हैं
पूर्णप्रज्ञ के नियम नम
मेरे शब्दो मे पायेंगे अभिव्यक्ति स्वय।
यद्यपि कम हैं श्रोता अनुरूप-योग्य
वे मुझे मिलेंगे ही निश्चय,
मैं गाऊँगा!

यो कवि, पवित्रतम मानव—
करता रहा प्रार्थना झुका शीश,
मांग्रा स करता अधिक प्राप्त।

चाहिये मुझे कोई दिखलाये पथ और
वाणी समर्थतम शब्दो मे भरदे गौरव
उतरे धरती पर, स्वर्गों के शिखरो से
मुझमें भरे स्फूर्ति!

मुझको चलना है छायाओ से भरे मार्ग पर
तन्मय हो
डूबना गहनमें और पुन
ऊपर उठना है लिये ज्योति,
भरना है मुझको श्वास लोक लोको मे जो
भर उठे प्राण
स्वर्गों का स्वग बने झिलमिल अवगुण्ठन सा।

वह शक्ति, सकल आतक, निहित जो
हुआ व्यक्ति-आकृति मे आ
विद्युत्गजनमय परमात्मा न्यायी कठोर
स्तुति-गान गुँजाते देवदूत
वैभव अपार दर्शित करते वे सिंहासन
सम्राटो के
मैं निकल रहा सबके समीप से
नही भीत!

उत्पात घोर, रे सघन तिमिरमय
नरक निम्नतम या कि विजन
गहनाधकारमय महाशून्य
स्वप्नो के भय से उद्वेलित-सी महारिक्ति
इन सबसे भी वह भय आतक नही जगता
जसा अपने मन के भीतर ही
हमे झाकने में लगता,
मानव के मन मे झुककर है देखना कठिन,
पर वही ठौर है रे मेरी,
मेरे गीतो की मूल-भूमि तो है वह ही।

जीवत एक सत्ता पृथ्वी की जागरूक
धरिणी के भौतिक तत्त्वो से

अति सूक्ष्म चेतनाएँ जिनको
अतिकौशल से निर्मित करती
उसको भी जो कि पराजित कर देती महगा
वह सुन्दरता—
आई मेरे सोपानो पर।

मै चलता हूँ,
मेरे सम्मुख ही निविर किये स्थापित अपना
है वनो पडोसिन मेरी वह इस वेला म,
वे कु ज मधुर छाया वाले
जिनम नन्दनवन का विहार था
कर उठना कलरव मृदुतर,
रे स्वग,
सभी कुछ हुए भला क्यो विगतसार ?
इतिहास वन गये क्यो उनके, जो वन गये ?
या वह केवल थी दंत कथा आधारहीन ?
मानव का यह जिज्ञासु-मनस
पावन सुओज औ प्रेम मधुर से हुआ पूर्ण
जब सकल सृष्टि से कर लेता तादात्म्य स्वय
खोजेगा सबको ही जैसे
साधारण कोई वस्तु सहज दिन की पाये,
कर लेगा सबको पुन प्राप्त।

वह मधुर काल आये उससे ही पहले मै
इस महत् विलय की गाथा को
गाऊँ पावनतम हुआ शान्त।
जो हम हैं उतने ही शब्दो म उठूँ बोल,
वासना-ग्रस्त उन सबको जाग्रत कर डालू

जो मृत्यु-विनिद्रा मे डूबे,
औ' शून्य, ग्रह से त्रस्त रिक्ति से जो प्राणी
उनमे उदात्त ग्रानन्द जगादूँ स्फुरित प्राण !

उद्घोषित करद मेरा स्वर—
सम्पूर्ण यानि की प्रगतिशक्तियों के समान
यह व्यक्तिमनस है वाह्यलोक से
किये हुए निज सामजस्य मनोज्ञ ग्राप,
ग्रौ' वाह्यजगत् भी मन से है
ग्रनुकूल स्वय
यद्यपि इसका है नही ग्रभी तक
हुग्रा लोक को स्पष्ट ज्ञान,
यो सृष्टि सकल का रागात्मक सम्बन्ध जगे
मेरा है यह उद्देश्य श्रेष्ठ !

भूमा की वह जीवत मधुर शोभन सत्ता,
सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेतन ग्रात्माग्रो ने जिसका
पृथ्वी के तत्वो से चुन चुनकर ग्रकथनीय
सुषमा भरकर
रे सर्वश्रेष्ठ छवियो की सीमा किये पार
निर्माण किया—
वह सुदरता—
कर रही प्रतीक्षा है मेरे ही चरणो पर,
मैं चलता हूँ
वह मुग्धा ग्रपना शिविर सामने ही मेरे
स्थापित करती,
क्षणभर का सगी स्वर्ग मधुर,
वे नदनवन, वे मधुर निलय,
केवल ग्रतीत के विगत रूप क्यो बने हाय ?

[सात

या वे केवल थे कल्पित हो
जिनका अस्तित्व न था भू पर
रे वर्त्तमान ?

मानव की बौद्धिकता जिज्ञासा में विरता
सुंदर जग में जब प्रेम और आवेश मग्न
होती है तन्मयता से भर
सब कुछ होजाता है सहज आप।

वह अंतिम क्षण अति मधुर
करे अपना प्रवेश
उससे पहले ही मधुर शान्ति से भर उदार
इस अतिमहान
रागात्मक लय का गाऊँगा वह मुखरगीत।
उन शब्दों से जो करें हमारा बिंबन
बिल्कुल ही यथार्थ
वासनापीडितों को मैं उनकी मृत्यु-नींद
से जाग्रत कर दूँगा समर्थ।
जो अहंकार से ग्रस्त भटकते शून्य हृदय
उनमें उदात्त तल्लीन एक
सम्मोहन मैं
भर-भर दूँगा,

यदि त्याग कभी जाना होगा मुझको इन मधुर स्थलों को औ'
विविध मानवों तथा जातियों का होगा सान्निध्य प्राप्त,
विद्वेष परस्पर दीखेंगे संघर्ष जन्य
तृष्णाओं के कारण प्रसूत,
खेतों कुंजों में दीखेगी रोती प्रपीडिता
मानवता,

या दुखो के तूफानो के ऊपर उठ कर
करना होगा मुझको चिंतन
नगरो की प्राचीरो में घिर,
तब भी ये स्वर न कभी छोडगे मुझे दीन,
मैं होऊँगा न कभी सूना या रे
निराश !

ओ उतर ! उतर आ ऋषि चेतना ! उतर आ तू !
जो सार्वभौम मानव-आत्मा म
भरती है प्रेरणा दिव्य !
जो सतत भविष्यो के देखा
करती है सुपने उजियाले,
जिसका पवित्र गौरव निकेत मदिर पलता
है सदा महाकवियो के हृदयो मे
महान !

आ ! दे मुझको वरदान
एक जागे मुझमे
वह अन्तद्द ष्टि प्रकाशपूर्ण !
हो दीप्तिमान
मेरा प्रबुद्ध ये गीत
नखत सा विस्फुरित,
झर-झर बरसे कोमलताएँ
दुष्कृत प्रभाव हो सकल दूर
जो अतलतलो तक व्याप्त हुए
द्विगुणित होते है बार-बार !
औ' यदि मे निम्नस्तरो पर आ,
योजना निरत, चिंतन रत मानव के मन की
वर्णना करूँ

था कौन, कहाँ से आया वह,
यह दिव्य दृष्टि क्षण भगुरता मे जो
वह पाता,
था कहाँ, किस तरह रहता था,
तो मेरा श्रम हो नही व्यथ।

यदि वस्तु यही छूल अपने स्तर श्रेष्ठ उच्च,
तो सकल ज्योति की स्रोत दया
जिसकी अपार—
ओ भीम शक्ति !
मेरा जीवन सत् युग का विवाकन करने मे
हो समथ,
तृष्णाएँ हो पाई विवेक,
साद होवे व्यवहार सहज,—
सच्ची स्वतत्रता मे मेरा मन पालित हो,
निमल विचार सारे हो मुझमे आ केंद्रित,—
तब ता तेरा अक्षय दुलार अन्तिमक्षण तक
देगा सहायता, ओज, स्फूर्ति
पथ दशक बन
आलोक पूण !



सत्यकाम ने कहा जबाला से-हे माता !
ब्रह्मचर्य्यपूर्वक गुरुकुल में वास करूँगा,
बता गोत्र मेरा तू मुझको अब हे जननी !

बोली माँ हे पुत्र ! गोत्र मैं नही जानती,
यौवन मे परिचारिणी थी मैं कई घरो मे,
सत्यकाम जाबाल बताना तू अपने को।

गौतम हारिद्रुमन निकट जा सत्यकाम ने
कहा-पूज्य ! सन्निधि मे आया विनत आपकी,
ब्रह्मचर्य्यपूर्वक गुरुकुल मे वास करूँगा।

गौतम बोले—सौम्य ! गोत्र है कौन तुम्हारा ?
बोला सत्यकाम — पूछा मैंने माता से
नही जानती यही कहा है उसने मुझसे।

बोले गौतम—ऐसा सत्य बोल सकता जो
वह ब्राह्मण को छोड़ नहीं कुछ भी हो सकता,
समिधा ला, उपनयन करूँ, तू सत्यसंध है।

[छांदोग्योपनिषद् ४ ८]

उपनिषदों में केवल अध्यात्म की ही चर्चा नहीं है, मनुष्य के सत्य की व्यापक रूप में व्याख्या की गई है। सत्यकाम की कथा एक शाश्वत प्रेरणा देती है, जिससे हम लघुता से ऊपर उठते हैं।

'गुलाब की कहानी' चीन के वाई ची लिन नामक एक युवक कवि की बहुत प्रसिद्ध कविता है, जिसमें मर्म को छू लेने की शक्ति है। आप क्वांगसी प्रांतीय हैं। यह कथा एक प्राचीन किंवदंती पर आधारित है।



गुलाब की कहानी

(वाई ची लिन)



मै, हरीभरी पर्वतमाला घेरे शाद्वल में गाता हूँ,
रे बहुत दिनों पहले की गाथा एक
सुनाता हूँ तुमको—

था एक ग्राम
अति शांत वहाँ झोपड़े बने थे मनरजन
फ़पो नद का निर्मल जल था
बहता कल कल ।

था वहा एक रहता अति सुन्दर युवक,
पिता था कमकर ही,
वह तरुण चपल तरु सा था जैसे घाटी मे,
निर्भीक सुदृढ
धरती पर कोई शक्ति न थी जो
उसे दबा लेती ग्रस कर,
वह नील नाम से ख्यात
चलाता हल खेतो मे कौशल से,

पशुओ के लिए दयालु-हृदय,
ले खडग और भाला करता था वह अहेर
रे दुर्निवार।

उसके तुरग के सुम पृथ्वी पर बजते थे,
औ' भीम शृग मे स्वर उसका
भर भर उठता था तुमुलनाद,
वन के वे भीषण हिंस्र जन्तु
आतकित से थर्राते थे
उसके शब्दो को सुन छिपते।

अश्वारोही वह अनुपमेय था
अति त्वर गति,
सब थे पुकारते उसे 'वीर'
अति लाड भरे।

थी यिना सुन्दरी
एक कृपक की प्रिय पुत्री
थी कुशल अँगुलियाँ सूक्ष्म कढाई म उसकी,
मितव्यय मे निपुणा थी कुशाग्रधी वह सुमुखी
रुक जाते थे मृग स्तब्ध हुए
जब वह करती थी नृत्य मधुर,
स्फटिकाभ नयन उसके निर्मल,
स्वर करता था झकृत उर उर,
था इद्रजाल का सम्मोहन
भरता उसका कोमल गायन
सुन व्योमविहारिणी कोयल भी
हारती, विमुग्ध होते तन मन।

वह अपराजिता मनोज्ञा थी,
सब जो पुकारते थे उसको
वह 'कुसुम' नाम के योग्या थी।

जो तरुण देखता था उसको
न्योछावर करता था जीवन,
सम्पूर्ण समर्पित कर देने
लालायित हो उठता था मन।
औ' नील रूप का स्रोत बना
था किशोरियो का रूप-केन्द्र,
सकोच रोकता था उनको
अन्यथा वही उनका वरेन्द्र!

पर हृदय यिना का था कवल
आसक्त नील मे सराबोर,
औ' नील सुदृढ था उसको ही
वरने को होकर अति विभोर।

क्षण क्षण मिलते वे प्रणय मुग्ध,
पल पल लगता उनको सुखकर,
हो कोई बला क्यो न उन्हे
जीवन मीठा लगता रह रह,
जब अलस भोर में मद पवन
चलता था रे धीरे-धीरे
या अस्तप्राय दिन की छाया
जब होती थी तम के तीरे
वे सको वृक्ष के नीचे छाया में मिलते
या खाडी मे

थी जहाँ हिलोरें भर लहर छप् छप् करती
चाँदनी ओढ।

ऋतुएँ आती
फिर बिलमाती
वे अकह सुनाते एक दूसरे को तन्मय
उच्छ्वसित भाव निज बार बार
मखमली पछांही मृदु बयार
जब मधुऋतु की बहती मृदुला,
या तीतर चौंक फडक झिडकी
देते जब ग्रीष्मा मे फिर-फिर,
या जब गुलदाउदिया खिलती
हेमन्त बीच,
या कठिन शीत की स्तब्धा मे,
उनके मन का था प्यार विमल, दृढ सग-मग,
उज्ज्वल भी था, अति था बलमय
जैसे हीरक।

सुन्दरतम शोभन मृदल कुसुम का
रूप तिरोहित हो जाता,
हरियाली के सुदर वस्त्रो से
शोभित वन भी एक दिवस—
निज जीर्ण पात झर जाने से
नगा होता।

यो पहुँच गई चल राज सभा में
बात थिना की सुदरता की
एक दिवस

नृप ने आज्ञा दी—हो परिणय
छोटे कुमार से उस सुन्दरतम बाला का।
होगई एक आज्ञा नृप को,
किसमें साहस था अस्वीकार उसे करता?
दुर्भाग्य आगया प्रणय-ग्रथित उन हृदयों पर,
दुर्दिन था वह!

फपो नद ने उच्छ्वास भरे
अवसाद-मलिन होकर व्याकुल,
कोयल न कह सकी निज मानस की
पीड़ा को,
सुखकर स्मृतियों को दुहराने से
अधिक सालती क्या पीड़ा?
अब उन्हें बिछुड़ना था कल ही
कैसी कठोर थी वह बेला!

भर अश्रु नयन में रहे मौन
आलिंगन में वे बहुत देर,
पर विवश दीन!
औ' राजमहल में विना भेज दी गई हृत
परवश बलात्।

मीठी स्मृतियों की कसकन भर
घर के प्रति इतनी हो कातर
निर्मम विषाद से हो जर्जर
ऐसी न गई होगी पति-गृह
कोई दुल्हन!

सान्त्वना कहीं मिलती न तनिक
मन में दुख था उसके असीम,
आंसू ने अंधे किये नयन
बहती धारायें हुईं अरव।

ऐसी उदास पा वधू होगया
नृपकुमार मन में उदास,
नृप हुआ क्रुद्ध भ्रू चढी और
तन गईं आप।
किसलिये यिना थी व्यथासिक्त ?
कारण उसका हो शीघ्र दूर।
तब पिता पुत्र योजना क्रूर में हुए लीन।
अवसाद पूर्ण प्रासाद नहीं होगा प्रसन्न
जब तक न रूप मय नील कहीं वह
हो जायेगा निर्वासित।

तब हुआ नील बंदी, उसके
सिर पर था अब झूलता दण्ड,
औ' सभा बीच
दुख भरी यिना भी लाई गई विवश व्याकुल।
नृप न्यायाधीश कठोर बना
बोला अपराधी ! दिया कष्ट
तूने अपार
वेदना यिना की तेरे कारण है अगाध
मैं अतः तुझे दे रहा दण्ड
कर बंद काठ के बक्स बीच बंदी तुझको
फेनों को चढी हुई धारा पर ही निश्चय
फेंका जायेगा अब तुझको,
अब होगा तेरा यही भाग्य।

तब लेकर बदी नील तरुण
बह चली नाव जर्जर, जल पर डगमग,
उत्तुङ्ग लहर,
निमल आसू गिर गये यिना के
टपटप कर
नद के जल मे मिल गये विंदु जल के व्याकुल
जब नाव नील की हुई दृष्टि से चल जल पर
धीरे धीरे धीरे ओझल।

बहते बहते फ्पो नद की
धारा जाकर करती प्रवेश
दूसरी भूमि मे, जहाँ दूसरा है प्रदेश।
था वहाँ एक उत्तुङ्ग महल
खपरैल सुनहली और स्निग्ध
दूर से चमकती थी जिसकी।
थी राजकुमारी वहाँ
तीर पर विचरण करती देर देर,
लम्बे कुन्तल उसके जल पर बहते रहते
धारा लघुलहरी से कल कल
क्रीडा करती।

उस दिवस हुआ जब नव प्रभात,
रवि हुआ उदित ऊपर चढ़ता
हर्षित कलरव से विहगो ने भर दिया
पवन,
अति स्वच्छ स्फूर्तिमय मदु बयार
बह चला मद,
वह राजकुमारी तट पर थी
काढती केश
फ्पो की धारा को निहारती स्निग्ध दृष्टि।

छेडा उसने सगीत मृदुल
जो रोम रोम झकार गया
सुनने वालो का झूमझूम,
तब अकस्मात्
दिख पडा काठ का बक्स एक
जल पर बहता ।
वह चकित देखती रही, बिखर उड चले केश,
जा उलझी उससे और रुक गया
चपल काठ ।

अनुचरिया भागी, अति उत्सुक,
खोला ढक्कन
देखा मृतवत् था तरुण एक
उसमे बदी ।
सवाद त्वरित गति गया नृपति की सेवा में,
राजाज्ञा आई उसे बचालो मरने से ।

चेतन होकर तब उठा नील
दुख भरी कथा अपनी उसने
नृप के सम्मुख कहदी कातर ।
औ' राजकुमारी विचलित हो रो उठी दीन,
नृप ने दुहिता के भावो को पढ कर मन मे
तब लिया नील को वही रोक ।

घूमती सदा ही राजकुमारी सग सग,
पर नील हृदय दृढ पर चढ पाता नही रग,
उसके लहराते केशो का क्या उसे मोल
जब धिना और उसमे इतनी दूरी थ बोल ।
दुखमय प्रवास मे श्रान्त नील
फर्पो की धारा के समीप

गा उठा करुण वेदना से भर
अपनी पीडाओ को उँडेल—

'ओ मेरी सुन्दरतर प्रेयसी
बिछुडे हम कितने हुए दूर !
बस एक बार लेता निहार
चल सग तुम्हारे श्रात चूर !

होता खग मैं सगीत भरा
आता तब मैं तेरे कुटीर
मैं बैठ झरोखे मे गाता
बस एक तुम्हारे हेतु धीर !

हो पाता प्रिय यदि मै रूमाल
जो रहता तेरे सदा पास,
या अनिल कक्ष मे जा नेरे
जो धीरे से भरता उसास

जब तुम्हें नही आती होगी वह
मधुर नीद,
यत्नो मे जाते होगे तेरे नयन
भीग '

वह दुखद गीत
ले चला अनिल
ओ' गया महल मे
यिना कक्ष मे गु जन भरकर
बहुत दूर,

श्रौ' यिना उन्ही भावो मे होकर जीर्णशीर्ण
अवसादमलिन गा उठी, पवन के
झोको पर—

'क्या कभी नही लौटोगे प्रिय !
मेरे भय होगे नही दूर ?
देखो ये आँखें सूज गईं।
पलके हैं मेरी क्लाति चूर।

कितना रोऊँ अबतो देखो
आँसू भी मेरे नहीं पास,
चुक गया सोत, केवल बाकी
हैं ये जलते जलते उसास।

प्रिय कहा गये तुम अटक हाय
नद, पवत या मैदान बीच ?
अब टूट गया है मेरा दिल
कब लौटोगे फिर, हाय सीच '

जब तैर यिना के स्वर पहुँचे रे
नील पास,
तब प्रेम तोड कर सब बन्धन
कर सका नही पल भर विलम्ब,
अब राजकुमारी के अनुनय
या कृपा या कि वे चल कुन्तल
कुछ भी न नील को सके बाध,
अब दिनभर को भी दूभर ही हो गया विरह

यद्यपि उदास
थी राजकुमारी हो निराश,
फिर भी उसने दे दिया उसे
ऊँचा तुरग अति सबल एक,
औ' एक धनुष दृढतम कठोर।
वह विदा न कह पाया उससे
आतुर अतीव
चल पडा यिना की खोज लिये
मन मे अधीर।

दर कूँच और दर मंजिल चल
मैदान कर उठा नील पार
अनथक अनगढ खादर उलाघता
वह अघोर

थी रात मौन
चाँदनी बिखर कर फैली थी
आगया अत मे वह सम्मुख
उस यिना कक्ष के आकुल मन,
वृक्षो के पल्लव ममर कर
आधा चद्रा थे ढँके हुए
अब तक विषाद की गाई थी गाथा व्याकुल
आतको को दुहराया था
अब इस सुख को कह उठे चपल

भुज ब धन म खोये दोनो
चुम्बन बरसे
मानो अब होगे अलग नही
भूले जग को

पर नयी आपदायें आईं
नृप और कुमार सहित आये
दुर्घष कठिन योद्धा कठोर
वे रहे घेर

उस राजकुमारी ने जो थे
शर दिये बहुत वे तीक्ष्ण फलक
निर्द्वंद्व नील
होगया खड़ा
संकट से लड़ने को निर्भय
उड़ चले बाण
प्रत्येक भेदता एक क्रूर उर को सहसा
क्षण भर न रुका वह भीम वेग।
पर घिरा हुआ मृग सा अहेर में कुत्तों से
वह नील अकेला था लड़ता
खेलता वहाँ आखिरी दाँव।

यों आया क्षण
चुक गये बाण।
तब दोनों प्रेमी कूद पड़े
उन संगमरी सोपानों पर
टकराये उनके सिर गिर
बह चला लाल लोहू तुरन्त निर्झर जैसा
रुक गये श्वास,
अनजान किसी नीरव अनाम
कब्र में सोगये
हो विलीन।

रुक गया मधुर कोयल का वह
संगीत मद,

चद्रमा सलज दुख से अपना
पीला मुख छिपा रहा व्याकुल,
तट के बादल घिर घिर आये
ढँक लिया गगन,
झाकता नही कोई तारा,
इस हिंस्र कर्म का साक्षी था
वह एक शब्द
जो नील-अश्व दुख से कातर
उठता कराह।

ज्यो महाखड्ड पर बहती कोई भीम बाढ
वह रहा काल,
ऋतुएँ करती थी परिक्रमा,
बीता ऐसे ही एक वर्ष।
उस विजन कब्र पर उग आया तब धीरे से
अनजान नया सा एक फूल
बिल्कुल विचित्र
कोमल दल वाला लाल रग मा फूट रहा
लज्जा का सा ज्यो नया उत्स,

भरता है उपवन म वह अपनी मदिर गध
आते यात्री है ओरपास ओ' दूर-दूर से
वहा तीर्थयात्रा सी करने को उत्सुक
पहले गुलाब को देख किया करते अचरज
तब स कुमारियो का जो है
अति काम्य कुसुम!



प्रश्न



तब न था असत्
औ' सत् न कहीं
थी भूमि नहीं, औ' नहीं व्योम,
आवरण कहाँ क्या किसके हित
केवल जल था गम्भीर गहन ।

थी नहीं मृत्यु, अमृत न कहीं,
दिन नहीं और थी नहीं रात,
था वही एक, निज में निमग्न,
अतिरिक्त न था कुछ और शेष ।

तम था, सब कुछ था तम निमग्न,
था सबही सलिल, अरूप मात्र,
उस तुच्छ अविद्या व्याप्त विश्व से
तप महिमा से उसी एक ने लिया जन्म ।

पहले इच्छा बन गया काम,
था क्योंकि बीज तो विद्यमान,
सत् मेधा में तब मनीषियों ने लिया जान
सत् माध्यम को ही हुआ असत् साक्षात्कार ।

घन रश्मि तन गया तव वितान,
क्या मध्य और ऊपर नीचे, कुछ नहीं भान,
तब जगे जीव, नौका महान था भोग्य अधम ।

जानता कौन
जिस भांति हुई यह महा सृष्टि
आगई कहां से, कहे कौन ? किसने रच दी ?
आये वे देव तभी जब पहले भूत सृष्टि थी विद्यमान
फिर किससे आई सृष्टि,
ज्ञात किसको रहस्य ?
जिसने भी इसका किया सकल विस्तार आदि
वह ही धारण करता इसका या नहीं स्वयं ?
जो है इसका अध्यक्ष स्वयं
औ' परं व्योम में है अपना करता निवास
क्या स्वयं जानता है वह भी या उसको भी है नहीं ज्ञात ?
कह सके कौन ?
[नासदीय सूक्त, ऋग्वेद १०।१२९।१-७]

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में वेद की यह ऋचा सचमुच महान है, इसमें जितनी गहराई है, उतनी ही बौद्धिकता की विशालता है, जिसमें किसी भी रूढ़िवाद या संकीर्णता को स्थान नहीं है।

प्राचीनकाल में अन्य जातियों में सृष्टि की उत्पत्ति और व्याख्या के विषय में जिज्ञासा रही है। आज मिस्र देश संसार के सबसे प्राचीन देशों में समझा जाता है। मिस्र देश में प्राचीनकाल में विभिन्न देवताओं की पूजा होती थी। विशाल मंदिरों का वहां जाल फैला हुआ था। उस समय वहां एक सम्राट हुए, जिन्होंने तत्कालीन देवता 'अम्मन' को सर्वोच्च स्थान देने से इन्कार कर दिया। इस विद्रोही सम्राट् ने यह नहीं माना कि हर एक देश का एक एक अलग देवता है। उसने सबका प्राणदाता और सर्वेश्वर अतन् अर्थात् सूर्य्य माना और अपने नाम में भी उस शब्द को जोड़कर अखनातन कर लिया। यह सम्राट अधिक दिन नहीं रहे। तत्कालीन मिस्रियों ने उन्हें 'काल्पनिक' और 'अव्यावहारिक' समझ कर समाप्त कर दिया। सूर्य्य देवता को मिस्री पहले रा कहते थे। सम्राट ने उनसे अत

बनाया। वे एक सार्वभौम देवता को स्थापित करके मनुष्यों के भेदों को मिटाना चाहते थे। अखनातन की पूजा के गीतो मे से यह उद्धरण लिये गये हैं। सम्भवत यह उन्ही के द्वारा रचित भी थे। उनका समय ईसा से १५०० वर्ष पूर्व के लगभग माना जाता है। हो सकता है कुछ पहले ही हो। उन्होने परमेश्वर का व्यापक रूप देखने की चेष्टा की थी। भारतीय चिंतन मे यह विचार हमे वेद मे मिल जाता है, उपनिषदो मे भी, महाभारत मे तो इसको पाना कठिन हो गया है।

अनुवाद मे मैंने जहा तक बन सका है अपनी अभिव्यक्ति मे इस रचना की सार्वभौमिकता को उतार लाने की चेष्टा की है। भारतीय मस्तिष्क को यद्यपि इस रचना मे तुलनात्मक गहनता कम मिलेगी, फिर भी जिज्ञासा की तृप्ति तो होगी ही। भारतीय मनीषा ने जिस व्यापकता से वस्तुओ को छुआ है, उसकी एक झलक हम सम्भवत इसमे भी प्राप्त हो जाय।



सूर्य : अतन

अखनातन



अतन की शक्ति

है उदय मनोहर अति सुन्दर
तेरा नभ के उस क्षितिज बीच,
हे जीवित अतन, स्वय तू ही
जीवन क्या है प्रारम्भ, आदि ।
जब पूर्व क्षितिज मे उठता तू
सपूर्ण भूमि मे तेरा ही
लावण्य व्याप जाता मनोज्ञ ।
तेरी किरणे, तेरे द्वारा
निर्मित पृथ्वी की सीमाए
जाती उलाघ ।

तू है सुन्दर, तू है महान्
देदीप्यमान,
सारी पृथ्वी से ऊँचा तू,
तू ही रा है

सबको तू ही अपने बदी सा
रहा बाँध,
तू सबको ही निज प्रेमपाश मे
किये बद्ध !
तू यद्यपि है इतना सुदूर,
पर किरण तेरी हैं भूपर,
यद्यपि तू इतना ऊँचा है
सबसे ऊपर,
पर यह दिन हैं तेरे ही तो
पग-चिन्ह सदृश।

रात्रि

जब तू नभ के
पश्चिमी क्षितिज मे आती है,
पृथ्वी पर छाता अधकार
जैसे निष्प्राण बना सब कुछ।
सोते सब अपने कक्षो मे,
अपने लेते वे शीश ढाक,
रुक जाते उनके श्वासश्वास,
कोई न देखता एक दूसरे को निश्चय,
सिर के नीचे की सकल वस्तुएँ
खो जाती हैं छिन जाती
पर उनको होता नही ज्ञान।

निज गुहा छोड
बाहर आते हैं क्रूर सिंह,
विचरण करते विषधर भुजग
डसते फिरते।

बस अधकार
निस्तब्ध शात सब विश्व मौन।

जिसने सबका निर्माण किया
वह इस वेला
जा क्षितिज प्रात मे है करता
विश्राम शात ।

दिन और मनुष्य

तू जब उठता है क्षितिज प्रात में कर प्रकाश
आलोकित होती वसुन्धरा
तू दिन मे बन कर अतन चमकता दीप्तिमत
रे खडखड कर तिमिर दूर करता अभीत,
भेजा करता जब तू अपनी किरणें सुन्दर
उत्सव भूमा म जगता है तब
हृप पूर्ण !
जब जाग्रत करता सकल प्रजायें तू अपनी
अपने चरणो पर मानव है उत्थित होत ।
कर स्नान, वस्त्र धारण करते,
तेरे अरुणोदय को निहार
वे हाथ उठा कर लिये प्रशसा नयनो म
रे कर उठते हैं नमस्कार !
औ' सकल भूमि पर होते हैं
वे व्यस्त, काय करते अपार ।

दिन और पशु पादप

पशु करते है विश्राम चरागाहो पर
सुख से घूम रहे,
तरु पादप होते है वर्द्धित,
दलदलो बीच पक्षी फर फर करते मुखरित
उडते मनहर,

वे पख खोलते हैं अपने
मानो करते हैं वे तेरा ही अभिनदन ।
मेमने और भेड पुलकित
चचल पग धर धर चलती हैं
मानो वे करती है नर्तन ।
पखो वाले सब उडते हैं,
जब उनको तू देता प्रकाश
वे प्राण भरे से मुखरित हो
जीवन का देते हैं दर्शन ।

दिन और जल

धाराओ पर चलती नाव
ऊपर जाती, नीचे बहती,
प्रत्येक पथ खुल जाता है,
जब तू नभ मे आ जाता है
भर नवालोक !
तुझको निहार कर ही जल मे
मछलियाँ उछलती मुग्ध प्राण,
उस गहन हरे नीले सागर के जल प्रसार
के बीच किरण तेरी करती
झिलमिल प्रवेश !

मानव-सृष्टि

नारी मे तू ही रज का
निर्माता है औ'
नर मे तू ही उत्पत्ति बीज की करता है,
माता के तन मे बालक को
तू ही तो देता है जीवन,

सात्वना स्नेह तू देता है जो
रो न उठें वह आकुल वन,
तू करता पालन गर्भ बीच,
जिसका करता निर्माण, उसी चेतन मे तू
है सांस फूंक कर भर देता!
जब वह तन से बाहर आता
निज जन्म दिवस पर, तब तू ही
वाणी भरता उसके मुख मे
तू ही उसकी आवश्यकता
पूरी करता।

पशु-सृष्टि

जब शावक मृदु कलरव करता
अंडे मे से बाहर आता
तू ही उसको जीवन देता
देता उसको है मृदुल सांस,
जब तू उसको उद्यत करता
अंडे से बाहर आने को
तब ही बाहर आकर अपनी
सम्पूर्ण शक्ति से वह कर उठता है कलरव।
बाहर आकर अपने दो पाँव पर पक्षी
तेरे कारण ही चलता है।

सम्पूर्ण सृष्टि

बहुकृत्य! अरे कितने व्यापार यहाँ
अगणित देखते तेरे!
हमसे वे सब हैं छिपे हुए,
ओ एक मात्र ईश्वर! तेरी

जैसी है शक्ति नही मिलती
अन्यत्र कही,
कोई भी है तुझ सा न और
सामर्थ्यवान !
जब तू था एकाकी तूने
अपनी इच्छा अनुसार किया
इस वसुधा का निर्माण स्वय ।
मानव, पशु सारे लघु विशाल,
जो भी भूमा पर चलते हैं,
जो भी पृथ्वी पर रहते हैं,
जो ऊपर हैं
उडते अपने पखो को फैला कर नभ मे,
सब तेरे है ।
तू ही सिरिया औं' कुश जैसे परदेशो मे,
तू मिस्र देश मे, सब मे ही
प्रत्येक मनुज को लगा रहा
उसके अपने ही कार्यों मे,
तू सबको सयोजित करता
अपने अपने व्यापारो मे ।
तू सबकी आवश्यकताएँ
पूरी करता ।
प्रत्येक व्यक्ति को तू ही देता है कुछ कुछ,
तू ही सबकी है आयु नियत करता
जग में ।
भाषाएँ विविध मनुज बोला करते
पृथ्वी के अचल पर,
फिर भी सब लगते हैं समान
पर अलग अलग पहचाने जा सकते हैं सब
सबके रगो म भेद किया है तू ने ही,

तू ही विदेशियो से परिचय रखता सुदूर,
अनजाना कर देता मनुजो को,
आपस मे।

मिस्र और विदेशो मे जल सिंचन

तू ही पृथ्वी के नीचे है
निर्माण नीलनद का करता
अपनी इच्छा अनुसार उसे
बाहर लाता,
मनुष्यो को जीवित रखने को
है उसे प्रवाहित कर देता।
तूने मनुजो का निर्माण किया केवल
अपने हित ही,
तू है सबका स्वामी शासक,
तू सबमे ही करता अपना विश्राम अमर।
तू है स्वामी प्रत्येक भूमि का एकमात्र,
जिन पर मानव रहते हैं अब,
ओ दिन के उज्ज्वल सूर्य! महत् तेरा गौरव।
रे दूर-दूर के सकल देश
तेरे हैं, सबमे तू ही जीवन चला रहा,
तूने ही नभ मे एक नील नद
का ऊपर निर्माण किया,
जब वह गिरता है झर-झर कर
मनुजो के हित,
तब वह शैलो पर लहरो सा घुमडा करता,
जैसे वह सागर नील-हरा घहरा करता है
रे महान,
वह नगरो में मनुजो के है
सिंचन करता।

ओ रे अनत के शाश्वत प्रभु !
व्यापार सकल तेरे कितने
अद्भुत सुन्दर,
कैसा उनमे कौशल अपार !
है विदेशियो के हेतु गगन मे एक नील
नद की धारा,
जो चलते पृथ्वी पर पशु अपने चरणो पर
प्रत्येक देश मे
उनके हित प्राणो को सवर्द्धन
बहती नभ मे धारा ।
पर मिस्र देश के हेतु नील नद की धारा
आती पृथ्वी के नीचे वाले
गहन लोक से ही
ऊपर ।

ऋतुएं

तेरी किरणें पालन करती
प्रत्येक मनोहर उपवन का,
जब तू उठता है
वे जीवित हो उठते ह,
तेरे कारण ही बढते ह,
रे पलते हैं ।
तू ही ऋतुओ का करता है
निर्माण यहां,
अपने व्यापारो का सिरजन करने के
हेतु स्वय निश्चय ।
शीतलता देने को ऋतु शीत बनाई है,
है ग्रीष्म बनाई ताकि करें वे तेरा
भी तो आस्वादन !

यह नभ सुदूर भी तूने ही निर्माण किया
हो जिससे तेरा उदय और तू उठ पाये,
देखे जिससे उस सबको तू
जिसका तूने निर्माण किया।
जीवत अतन बन दीप्तिमान अपने स्वरूप मे
एकाकी औ' तू केवल
हो उदय, प्रोज्ज्वलित, चले दूर तक स्वेच्छा से
औ' सके लौट,
इस हेतु किया तूने नभ का सिरजन ऊपर।
एकाकी तू केवल अपने द्वारा ही करता है सिरजन
लाखो रूपो का रे अपार,
नदियाँ, पथ, नगर, ग्राम, औ' पुर,
जातियाँ आदि।
सारे लोचन तुझको निहारते
अपने ही सम्मुख प्रोज्ज्वल!
तू ही है दिन का अतन ज्योतिमय
भूमा पर



विश्वास

जो नाशवान देवों की करते उपासना
वे भीषण अंधकार में हैं करते प्रवेश
जो अविनाशी की उपासना के
झूठ गर्वों में रत हैं,
वे उनसे भी भीषण तम में
गिरते अवाक्।

[ईशावास्योपनिषद् १२]

उपनिषदों में ब्रह्म को सर्वोपरि माना है। सत्य के रूप में ब्रह्म है। यद्यपि ब्रह्म को स्वीकार न करने वालों का हम यहाँ विरोध मिलता है, परन्तु मूलतः यह विरोध मनुष्य की रूढ़िवादिता से है जिसमें व्यक्ति अपने को ही सबसे ऊपर समझ लेता है।

ईश्वर के एकत्व में इस्लाम का भी अटूट विश्वास है। छोटे-छोटे देवताओं के राज्य में मनुष्य जातियाँ विभाजित थीं। पैगम्बर बन कर आये थे मुहम्मद और उन्होंने सब कबीलों को एक करने की चेष्टा की। अल्लाह को सर्वोपरि बताया। सिमाइट भाषाओं में अरबी के अल्लाह और हीब्रू के ऐलोहीम दोनों एक ही धातु से निकले हैं।

मुहम्मद ईसा की छठी शताब्दी में अरबदेश में हुए थे। वे दार्शनिक भी थे, शासक भी। उन्होंने अपने को पैगम्बर भी घोषित किया था और अपने अनुयायियों को मुसलमान कहा था।

प्रस्तुत रचना अल मलाइकाह या अल फातिर नामक, कुरआन के एक अध्याय के, एक अंश को प्रस्तुत करती है। इसका इलहाम मुहम्मद को मक्का नगरी में हुआ था।

४

स्रष्टा

[पैगम्बर मुहम्मद]



जय हो अल्लाह महत् की
जिसने रचे लोक औ' यह पृथ्वी,
दो, तीन, चार आदिक पखों के देवदूत
जिसने नियुक्त हैं किये स्वय,
स्वेच्छा से वह अपनी समग्र इस सृष्टि बीच
चाहे जितना वर्द्धन करता,
ऐ हो ! वह है अल्लाह पूर्ण
केवल है वह ही अतिसमर्थ !

अपनी करुणा से जो भी वह मनुजों के हित
करता प्रदान
उसमें बाधा बन कर कोई सकता न रोक।
जो स्वय नहीं देता है वह
उसको ला सकता कोई भी न सशक्त शेष।
वह शक्तिमान ! है बुद्धिमान !

और मानवो ! न भूलो तुम
उसकी तुम पर करुणा अपार !

उसके अतिरिक्त गगन-भू मे है कौन और स्रष्टा बोलो
जो तुम्हे तुम्हारी आवश्यकताए देता
ऐसा उदार !

उसके अतिरिक्त नही कोई भी परमात्मा,
फिर कहाँ जा रहे हो बोलो, तुम हुए दूर !

यदि तुझे, मुहम्मद को, करते स्वीकार न वे
तो उसके भेजे देवदूत ये पहले भी
मनुजो ने अस्वीकार किये,
सब कुछ उसमें ही जाता है
स्वयमेव लौट !

मानवो ! निहारो !
सत्य प्रतिज्ञा है उसकी ।
जग का जीवन तुमको न भ्रमो मे सके डाल
पथभ्रष्टा तुमको नही सके बहला निश्चय
उसके पथ से ।

देखो ! शैतान तुम्हारा है अति भयद शत्रु,
अतएव उसे तुम समझो अपना शत्रु घोर !
अल्लाह सदा ही न्यायपूर्ण
शैतान दुष्ट के दल के अनुवर्तीजन को
भीषण ज्वालाओ मे निश्चय फेका करता ।
जो हैं आस्तिक करते हैं अच्छे कर्म, उन्हें
आहार मिलेगे अनुपमेव,
औ' क्षमा उन्हीं को रहे प्राप्य ।
जिसको अपना दुष्कर्म श्रेष्ठ सा लगने का भ्रम होता है,
क्या वह शैतानी-पाश मुक्त ?
अल्लाह उसे भटकाता है जिसको होती उसकी इच्छा,

चाहता जिसे उसको वह पथ दिखलाता है,
अतएव भरो मत श्वास पाप के लिये मूढ !
है उसे ज्ञात सब कौन कहाँ क्या करता है,
वह जागरूक !

है वही भेजता पवनो को जो
ऊपर लाते घने मेघ,
हम उसे मृत्यु-भू मे ले जाते और पुन
मृत धरती को करते सप्राण,
हैं वही पुनर्जीवन अतिम ।
हो जिसे शक्ति कामना जानले वह निश्चय
सामर्थ्य उसी की है समस्त ।
सत्शब्द उसी तक उठते हैं,
वह ही करता है पुण्यो का रे
सदोत्थान ।
जो असम विषमताओ के है रचते कुचक्र
उनका होगा परिणाम भयकर और अत
वे खण्ड खण्ड होगे दुष्कर्मो के विपाश ।
था किया धूलि से उसने ही
निर्माण तुम्हारा, और तनिक-सा
लिया साथ मे तरल तत्त्व,
फिर द्वन्द्व बनाये उसने ही नर नारी के,
करती न गर्भ धारण कोई नारी, न जन्म
देती शिशु को निश्चय
उसके अनजाने मे,
औ' जो होते हैं वृद्ध, नही हो सक्ते वे,
घटता न दिवस भी एक आयु से कभी क्योकि
सबका लेखा है वर्त्तमान !
ए हो ! उसको है नही कठिन यह सकल कार्य्य !

[इक्तालीस

दोनो समुद्र हैं नही एक ही सदृश
यह मीठा है, है मधुर पेय,
वह है खारा।
दोनो मे तुम पाते हो अपना भक्ष्य मास
औ' वे आभूषण जिन्हें पहनते हो तन पर।
बढ़ते जहाज हैं उन्हें चीर
मिल सके तुम्हें उसका अपार सम्पूर्ण
इस प्रकार।
तुम करो निरन्तर नमस्कार।

वह ही रजनी से दिन करता
दिन से कर देता वही निशा,
उसने अपनी सेवा में है
रवि-शशि को भी आधीन किया,
जिसका जितना नियत समय
वह उतना ही जीवित रहता।

ऐसा है वह अल्लाह,
तुम्हारा स्वामी है,
वह ही है रे सम्पूर्ण शासना का अधिपति
उसको तज कर करते हो तुम जिनकी उपासना भूल भूल
उनकी सत्ता उसके सम्मुख है नही शेष।
यदि तुम प्रार्थना करोगे उनसे, तो वे सब
सुन भी न सकेंगे शब्द तुम्हारा वह विनीत,
सुन कर वर दें इतनी उनमे है कहा शक्ति ?
वह दिवस कयामत का जिस दिन
आत्मायें फिर से जागेंगी
वे तुमसे सब सम्बन्ध त्याग देंगे पल मे,
सर्वज्ञ वही एक
नही उस जैसा कोई जो तुमको
अवगत कर सकता है सबसे।

ऐ हो मनुजो ! अल्लाह निकट तुम सभी दीन।
वह ही है बस सर्वोत्म और
रे शक्तिमान,
स्तुतियो का अधिकारी है केवल वही एक।
यदि वह चाहे,
तो पाले तुमसे छुटकारा
कर सकता कोई अन्य सृष्टि
जो स्थानान्तरित करे तुमको !
अल्लाह हेतु यह काय्य नही है कठिन तनिक।

रे भारग्रस्त आत्मा कोई सक्ती न भारहै अन्यो का,
यदि कोई भाराकुल पुकारती त्राहि त्राहि
कोई सम्बन्धी भी उसकी
कर सकता है पीडा न दूर।
तुम सावधान करते हो केवल उनको ही
जो अपने प्रभु से डरते हैं एकातो मे,
स्थापित उपासना की है जिनने झुका शीश।
जो सवर्द्धित होता (पुण्यो मे) वह केवल
अपने हित ही तो बढता है,
(अन्यो का कर सकता है पर वह नही त्राण)
वह तो है बस याता करता
अल्लाह ओर।

अधा होता है नही कभी दृष्टा समान,
होता न तिमिर आलोक सदृश,
छाया हो सक्ती नही बराबर
प्रखर सूय्य की महाज्योति सी तापमान,
जीवित होते हैं नही कभी मृत के समान।

देखो ! अल्लाह उन्हीं का है सिरजन करता
जिनको सुनना चाहता स्वयं।

तुम नही पहुँच सकते उन तक
जो सोये हैं कब्रा में अब।

तुम तो हो केवल सावधान कर्त्ता, केवल !
ऐ हो ! हमने भेजा तुमको है सत्य सहित,
शुभ सदेशो का वाहक कर,
पर सावधान कर्त्ता तुमको,
है नही एक भी जाति जहाँ
है सावधानकर्त्ता न हो चुका पहले हो।

यदि तुम्हे न वे स्वीकार करें,
तो पहले भी
कर चुके यही हैं और लोग।

उनके पैगम्बर तो प्रमाण प्रत्यक्ष साथ
आये थे उन तक
ले दिव्य-गीत, आलोक जगाते
लेकर रे अति दिव्य ग्रन्थ।

तब मैंने स्वय नास्तिको को रे लिया घेर,
कितनी भीषण थी मेरी घृणा अपार घोर !

क्या नही देखते तुम कि गगन से
बरसाता है वही वारि
जिसके कारण हम उपजाते हैं
भिन्न वर्ण के फल फलादि,
दिखती पहाडियो पर रेखायें श्वेत, लाल,
रे भिन्न वर्ण, औ' सघन कृष्ण,
मानव, पशु जतु सभी मे हैं
ये भिन्न वर्ण ?

उसके जो प्रतिभू हैं उनम
विद्वज्जन हैं डरते केवल बस उससे ही,
ऐ रे वह ही है शक्तिवत रे क्षमावान ।
रे जो पढते हैं दिव्य ग्रन्थ अल्लाह महत् का
उपासना मे नत तन्मय,
जो हमने उनको दान दिया है
गुप्त या कि रे प्रगट और प्रत्यक्ष उसीसे
व्यय करते,
अक्षय लाभो की ओर जा रहे हैं निश्चय ।
वह देगा उनको मजदूरी,
औ' अपनी करुणा का कर देगा वह प्रसार
उन पर उदार,
वह क्षमावत, है सदा ध्यान रखता महान ।

आभास

ॐ

यहाँ
वहाँ
सवत्र

पूण वह
और पूण यह
पूण पूण से निकला है
और पूण से पूण हटालो
तदपि पूण ही बचता है।

[ईशावास्योपनिषद् शातिपाठ]

पूण की भावना परमात्मा के साथ जुडी हुई है। वद से श्रीमद्भागवत तक भारतीय साहित्य मे विराट पुरुष का वणन मिलता है। भिन्न-भिन्न वणनो मे विभिन्न अनुभूतियाँ प्रगट हुई हैं, जो चितन और मनन क विभिन स्तरो की ही अभिव्यक्ति करती हैं।

गीता म श्रीकृष्ण ने अजुन को अपना विराट रूप दिखाया है। गीता श्रीकृष्ण का दिया हुआ उपदेश है, किन्तु महाभा त का भी एक अग है। जिस रूप म वह अब वर्तमान है, उसे कृष्णाद्वपायन व्यास की ही कृति समझना होगा। यहाँ मैंने गीता के दसवें और ग्यारहवें अध्याय को प्रस्तुत किया है।

विराट् रूप

(कृष्णद्वैपायन व्यास)



बोले माधव

हे महाबाहु !
तू सुन ये मेरे परम वचन, मेरा रहस्य
तेरा अखण्ड यह स्नेह जगाता है मुझमे
तेरे हित की कामना प्रबल।
मेरी उत्पत्ति नही, निश्चय जानते देवता औ' महर्षि,
मैं हूँ उनका भी कारण—
जन्मे हैं मुझमे ही वे सब भी,

जो मुझे अजन्मा औ' अनादि
लोको का ईश्वर मान चुका
है वही ज्ञानमय पुरुष
जोकि सारे पापो से विनिमुक्त !

रे बुद्धिज्ञान, मन का निग्रह,
इद्रियवश, सुख, दुख, असमोह,

ओ' मृत्यु, प्रलय, उत्पत्ति, अहिंसा, तृप्ति, स्नेह,
तप, दान, अभय, भय, यश अपयश
जो जगती में
दिखाते विभिन्न प्राणियों बीच
सब मेरे कारण होते हैं।
इस लोक बीच यह सकल प्रजा जन्मी जिनसे
सातों महर्षि, औ' चौदह मनु वे दीप्तिमत
जन्मे मेरे ही संकल्पों से यहाँ देख!

मेरी विभूति,
मम योग तत्व
जिसने अरूप यथार्थ
लिये हैं यहाँ जान
वह एक भाव से मुझमें ही
स्थिर रहता है।

मैं वासुदेव
सम्पूर्ण जगत का कारण हूँ,
मुझसे ही है उत्पत्ति और सब चेष्टायें
जो श्रद्धा से पहचान इसे लेता तुरन्त
वह मुझमें भाव समन्वय ही पा लेता है।

कर चित्त लीन जो मुझमें ही रहते सदैव,
अपने प्राणों का करते हैं मुझमें अर्पण,
जो मेरे वचनों में संतोषित हो जाते
अनवरत मुझी में रम जाते होकर विभोर।

जो लीन निरंतर हैं मुझमें
जिनकी न प्रीति का कहीं छोर

मैं बुद्धियोग से उन्हें नया देता प्रकाश
वे हो जाते हैं प्राप्त मुझी को रे अनन्य।

मै अनुकम्पा से प्रेरित हो
लय होता उनके मानस मे
अज्ञानो से उठता जो भीषण अंधकार
मै ज्ञान-दीप बन करता हूँ, उसका विनाश।

बोला अर्जुन

हे परब्रह्म! हे परमधाम!
हे शाश्वत परम पवित्र पुरुष हे सर्वव्याप्त!
तुम आदि सनातन! अज महान!
ऋषि करते नतशिर सदा तुम्हारा गहन ध्यान!
हे दिव्यरूप तुमसे देवो ने लिया जन्म!
देवर्षि सकल नारद, देवल, औ' असित, व्यास,
साक्षात् स्वयं,
कहते फिर फिर सब प्रीतिमान।

हे केशव! कहते जो मुझसे
है सकल सत्य, यह मुझे ज्ञात
जानता कौन तुमको भगवन्!
दानव न जानते तुम्हे, नही जानते देव।
लो! सकल भूत को है तुमने ही दिया जन्म! हे देव देव!
हे पुरुषोत्तम! भूतेश! जगत्पति! स्वयं भूतभावन! ईश्वर!
तुम स्वयं जानते हो अपने को, नही और!

अपनी विभूतियाँ दिव्य सकल
कहने मे केवल तुम समर्थ!
जिनके द्वारा तुम लोको को कर रहे व्याप्त!

औ' सत्य, प्रलय, उत्पत्ति, अहिंसा, तृप्ति, स्नेह,
तप, दान, अभय, भय, यश अपयश
जो जगतो में
दिखते विभिन्न प्राणियो बीच
सब मेरे कारण होते हैं।
इस लोक बीच यह सकल प्रजा जन्मी जिनसे
सातो महर्षि, औ' चौदह मनु ये दीप्तिमत
जन्मे मेरे ही सकल्पो से यहाँ देव!

मेरी विभूति,
मम योग तत्व
जिसने अकप धरध्यान
लिये हैं यहाँ जान
वह एक भाव से मुझमे ही
स्थिर रहता है।

मैं वासुदेव
सम्पूर्ण जगत का कारण हूँ,
मुझम ही है उत्पत्ति और सब चेष्टायें
जो श्रद्धा से पहचान इसे लेता तुरन्त
वह मुझम भाव-समन्वय ही पा लेता है।

कर चित्त लीन जो मुझमे ही रहते सदैव,
अपने प्राणो का करते हैं मुझम अर्पण,
जो मेरे वचनो म सतोषित हो जाते
अनवरत मुझी मे रम जाते होकर विभोर।

जो लीन निरतर हैं मुझम
जिनकी न प्रीति का कहीं छोर

मैं बुद्धियोग से उन्हें नया देता प्रकाश
वे हो जाते हैं प्राप्त मुझी को रे अनन्य।

मैं अनुकम्पा से प्ररित हो
लय होता उनके मानस में
अज्ञानो से उठता जो भीषण अंधकार
मैं ज्ञान-दीप बन करता हूँ, उसका विनाश।

बोला अर्जुन

हे परब्रह्म! हे परमधाम!
हे शाश्वत परम पवित्र पुरुष हे सर्वव्याप्त!
तुम आदि सनातन! अज महान!
ऋषि करते नतशिर सदा तुम्हारा गहन ध्यान!
हे दिव्यरूप तुमसे देवों ने लिया जन्म!
देवर्षि सकल नारद, देवल, औ' असित, व्यास,
साक्षात् स्वयं,
कहते फिर फिर सब प्रीतिमान।

हे केशव! कहते जो मुझसे
है सकल सत्य, यह मुझे ज्ञात
जानता कौन तुमको भगवन्!
दानव न जानते तुम्हें, नहीं जानते देव।
ओ! सकल भूत को है तुमने ही दिया जन्म! हे देव देव!
हे पुरुषोत्तम! भूतेश! जगत्पति! स्वयं भूतभावन! ईश्वर!
तुम स्वयं जानते हो अपने को, नहीं और!

अपनी विभूतियाँ दिव्य सकल
कहने में केवल तुम समर्थ!
जिनके द्वारा तुम लोकों को कर रहे व्याप्त!

हे योगी ! कैसे मैं सकता हूँ तुम्हें जान !
किस भाँति निरन्तर चितन मे मैं रहूँ लीन !
किन किन भावो में तुम मेरे हो ध्यान योग्य !

हे दीप्त जनार्दन ! मुझे बताओ निज विभूति
विस्तारपूर्ण निज याग करादो मुझे ज्ञात
इन अमृत भीगे वचनो को सुनते सुनते
हो पाती है मेरे मानस को नहीं तृप्ति !

तब बोल उठे श्रीकृष्ण घोर

कुरुश्रेष्ठ ! दिव्य मेरी विभूतिया हैं अनत !
हे गुडाकेश ! सब भूतो के मानस म स्थित
रे मैं ही सबका आत्मा हूँ,
सबका मैं ही हूँ, आदि, मध्य औ' अत स्वय !

आदित्यो म मैं ही हूँ ज्योति रूप विष्णु,
औ' सकल प्रकाशो म मैं ही हूँ,
किरणो वाला प्रखर सूर्य,
उन्चास मरुत जो चलते है
मै ही मरीचि हूँ, उनमे, हूँ दुधष वायु,
नक्षत्रो मे मै ही उन सबका अधिपति हूँ
रे चन्द्रदेव !

वेदो मे मैं हूँ, सामवेद,
देवो मे मैं हूँ स्वय इन्द्र,
मै सकल इन्द्रियो मे मन हूँ,
औ' सकल प्राणियो मे मै हूँ चेतना ज्ञान।

एकादश रुद्रो मे मैं हूँ शकर महान,
मैं यक्ष राक्षसो मे धन का अधिपति कुबेर,
वसुओ म म हूँ, अग्नि और
उन्नत शिखरो के सकल पवतो मे मै हो
मर्वोच्च शृङ्ग वाला सुमेरु !

मैं पुरोहितो मे स्वय बृहस्पति ज्ञानवान,
सेनापतियो में मैं सेनानी वीर स्कद,
पृथ्वी पर फैले जलाशयो म
मै ही हूँ, गहरा समुद्र !

मै हूँ महर्षियो मे भृगु ही,
वाणी म मै हूँ, ओकार अक्षर पुनीत,
यज्ञो म हूँ जपयज्ञ और
जो स्थिर हैं उनमे स्वय हिमालय हूँ, गभीर !

हे वीर धनजय ! सागर मथन बेला मे
अमृत से उच्चैश्रवस् श्रेष्ठ ज मा तुरग
वह ही मै हूँ,
जितने गजेन्द्र हैं उनम मैं एरावत हूँ,
औ' सकल नरो मे मैं ही हूँ, निभय नरेन्द्र ।

मै सकल आयुधो मे हूँ वह दुदम्य वज्र,
गायो मे मैं हूँ, कामधेनु,
मैं मकल प्रजा-उत्पत्ति-मूल हूँ कामदेव,
मैं सर्पों म हूँ, सपराज वासुकि प्रचण्ड ।

मैं नागो मे हूँ, शेषनाग
मै सकल जलचरो मे हूँ अधिपति वरुण देव !

[......

पितरो मे हूँ अर्यमा स्वय
ओ' सकल शासको में मे ही यमराज घोर ।

मैं दत्यो मे प्रह्लाद श्रेष्ठ,
तुम जिस जिस को गिन सकते हो
उस सबमे म हूँ स्वय काल,
पशुओ में हूँ मृगराज स्वय,
पक्षियो बीच हूँ गरुड आप ।

जो करते हैं पावन उनमे मैं स्वय पवन,
मैं योद्धाओ मे वीर राम,
मत्स्यो म मैं हूँ मकर ग्राह,
ओ' नदियो मे
मैं हूँ वह पावन सलिला उज्ज्वल गग-धार ।

मैं ही हूँ सारी महासृष्टि का
आदि, मध्य ओ' अन्त, पार्थ !
मैं वादो मे तात्विक निर्णय,
विद्याओ मे अध्यात्म ज्ञान ।

मै सकल अक्षरो मे अकार हूँ पहला ही,
मैं सकल समासो मे हूँ, अर्जुन ! स्वय द्वद्व !,
अक्षय है जो ये काल काल हूँ, मै उसका,
मैं ही सबका धाता विराट् ।

मैं हूँ सबका विध्वसक दुर्दमनीय मृत्यु,
मैं हूँ भविष्य के जन्मो का सारा कारण ।
धृति मेधा, स्मृति, श्री, कीर्त्ति, वाक्, ओ' क्षमा स्वय
नारियो बीच म हूँ केवल ।

मैं सकल गेय श्रुतियो मे हूँ वह बृहत्साम,
छदो में मैं हूँ गायत्री वह सवश्रेष्ठ,
मैं मासो मे हूँ मार्गशीर्ष सबसे मनोज्ञ,
ऋतुओ मे मैं ही हूँ, वसत ऋतुराज आप।

मैं हूँ छलियो मे स्वय द्यूत,
मैं तेजधारियो में हूँ प्रोज्ज्वल स्वय तेज,
मैं ही जय हूँ, स्थिर निश्चय में,
मैं ही हू, सात्विक पुरुषो का वह सत्त्व-भाव।

मैं वृष्णिवशियो मे हू पावन वासुदेव,
मैं ही हूँ पाण्डवगण में वीर धनजय भी।
मुनियो मे वेदव्यास और
कवियो म मैं ही शुक्राचाय समर्थ आप।



जो भी करते हैं दमन दण्ड हूँ, मै उनका, मैं दमन शक्ति,
जय की इच्छा करने वालो की मैं हूँ स्वय नीति,
मैं सकल गुप्त भावो मे हूँ साक्षात् मौन,
हूँ सकल ज्ञानवानो का मै ही तत्त्वज्ञान।

हे अजु न' सारे जीवा का मै एक बीज,
है नही चराचर मे कोई मुझसे विहीन

जो कुछ है, है मेरा स्वरूप!
मेरी दैवी विभूतियो का है नही अन्त,
तेरे हित ही इस एक' देश से कहता हू
अपना विभूति-विस्तार, परतप! समझ देख!

जो कान्तियुक्त, है शक्तियुक्त, जिसम विभूति
उस-उसको तू मेर ही तेजस का ही अर्जुन !
अश मान,
वह उसी अश से लेता जग मे यहा जन्म ।

इस अधिक जानने से तेरा क्या अभिप्राय ?
म अशमान से ही अपने
सम्पूर्ण जगत् को धारण कर स्थित हूँ महान !

सुन कृष्ण वचन
बोला अर्जुन

मुझ पर जो किया अनुग्रह है
कह गोपनीय अध्यात्म विषय
उससे मेरा अज्ञान हो गया है विनष्ट ।

हे कमलनयन ! भूतो का सिरजन और प्रलय
मै जान चुका,
हो स्वय तुम्ही अव्यय अविनाशी
चुका जान ।
हे परमेश्वर ! जैसा अपने को कहते हो
है वही सत्य,
पर पुरुषोत्तम ! अब ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, वीर्य्य,
बल, तेजयुक्त वह रूप तुम्हारा
चाह रहा प्रत्यक्ष देखना
मै निश्चय

उत्पत्ति और स्थिति, प्रलय तथा
अन्तर्यामी शासक हो तुम
कहलाते प्रभु

यदि रूप तुम्हारा वह सक्ता मैं झेल देख,
तो योगेश्वर ! दर्शन अब दो
अपना अविनश्वर रूप प्रगट
करदो महान !

बोले माधव अर्जुन की सुन कर यह वाणी
हे पार्थ ! देख मेरे अनेक, सकडों, हजारों
तरह तरह के, भिन्न वर्ण, भिन्नाकृति वाले
रूप अलौकिक ! ले निहार !

हे भरतवंश अवतंश ! देख आदित्यो, वसुओ, रुद्रो औ'
अश्विनीकुमारो मरुतो को
औ' अनदेखे कितने ही अद्भुत रूपो को
तू मुझमे ही अब ले निहार !

मेरे शरीर म एक जगह स्थित हुए
चराचर सहित अब सम्पूर्ण जगत्
तू देख, देख और भी चाहता
जो निहारना गुडाकेश !
निद्राविजयी !

पर प्राकृत नयनो से निश्चय
तू देख नही पायेगा मेरा वह स्वरूप
ले तुझे दिव्य लोचन देता हूँ हे अर्जुन !
अब तू मेरा ऐश्वर्य्य योग की शक्ति देख !

यह कह सजय धृतराष्ट्र नृपति से
फिर बोला

हे राजन् ! यो कह स्वयं महायोगेश्वर हरि
ने अर्जुन को
दिखलाया अपना परम रूप ऐश्वर्य दिव्य।

उनका अनेक मुख नेत्रो वाला वह अद्भुत
निस्सीम रूप दर्शन करके
दिव्यास्त्र और आभरण दिव्य से शोभमान
रे दिव्य वस्त्र मालाओ से मनहर स्वरूप
रे दिव्यगंध अनुलेपनमय आश्चर्यजनक
ऐसा विराट् ऐसा अनन्त
वह रूप देख
अर्जुन अवाक् रह गया कि जैसे एक साथ
आकाश बीच वे उदित हुए जगमग प्रदीप्त
सूरज सहस्त्र भी ज्योतिहीन से लगें
देख कर यह प्रकाश,
देखा उसने आश्चर्ययुक्त,
सम्पूर्ण जगत् जो, काल बीच मे हैं विभक्त
जो अलग अलग लगता प्रवाह
वह लोक लोक अपनी अनेकता सहित स्वयं
उस देवदेव हरि के शरीर मे
क्रम से, था, सब एक जगह स्थित
अप्रमेय!

तब रोम रोम दुर्धर्ष धनंजय का विभोर
होगया हर्ष से बार बार,
आश्चर्य चकित तब हाथ जोड
श्रद्धा से नतशिर गद्गद्-सा
उस विश्वरूप को देख देख
वह उठा बोल

देवाधिदेव !
मै देख रहा
देवता सकल, सब भूततत्व समुदाय और
कमलासन ब्रह्मा, महादेव, ऋषि भी समस्त
सब दिव्य सप
आपकी देह मे हैं सब ही ये वर्तमान !

हे विश्वेश्वर ! हैं अगणित मुख, लोचन अनेक,
है अगणित लोचन, उदर कई,
हैं आप लिये कितने अनंत निज गहनरूप !
मुझको दिखता है अंत नही, दिखता न मध्य,
मैं खोज नही पाता हूँ कोई यहा आदि !

हे परम विष्णु ! सिर पर किरीट,
कर गदा-चक्रमय आप दीखते हैं मुझको
हर दिशि से केवल ज्योतिपुंज,
ढेरी प्रकाश की, जैसे हो प्रज्वलित अग्नि,
जैसे होता जाज्वल्यमान वह मार्तण्ड,
पाती है मेरी दृष्टि आपको गहन गहन,
सब ओर देखता हूँ मुझको तो आप लग रहे
अप्रमेय !

हैं सकल विश्व के परम आप ही तो निधान,
अक्षर हैं केवल आप जानने योग्य परम,
हैं आप धर्म शाश्वत के रक्षक अविनाशी,
हैं आप सनातन पुरुष अकह रे दीप्तिमान !

हैं आदि, मध्य औ' अंत रहित,
सामर्थ्य लिये निज मे अनंत,
शशि सूर्य आपके लोचन हैं, हे भुज-अनंत !



प्रज्वलित अग्नि-सा मुख प्रदीप्त है ज्योतिमत !
हैं आप जगत् को तपा रहे
अवरे स्वतेज से महामहिम !

ऐ हो महान् आत्मा ! समग्र—
द्यावा पृथ्वी के बीच व्याप्त यह अन्तराल
औ' सकल दिशाये, एक आपसे हैं प्रपूर्ण
यह उग्र और अद्भूत स्वरूप आपका देख
अति व्यथित हो रहे हैं त्रिभुवन ये बार बार !

करते प्रवेश, गोविद ! देवताओ के वे सारे समूह
आपमे और
भयभीत हाथ जोडे करते आपके नाम गुण का
उच्चारण रोमाचित,
सारे महर्षि औ' सिद्ध प्राथना करते हैं
कल्याण मागते उत्तम स्तोत्रो द्वारा हैं
आपकी कर रहे स्तुति अपार ।

ग्यारहो रुद्र, आदित्य बारहो, आठो वसु,
उन्चास मरद्गण, विश्वेदेव, समस्त साध्य
अश्विनीकुमार, पितर सारे, गधव, यक्ष,
राक्षस औ' सारे सिद्धो के अब वे समूह
सब ही विस्मित से चकित भ्रमित हैं
रहे आपको ही निहार ।

हे महाबाहु !
आपका अनेको मुखवाला
अगणित लोचन, अगणित कर, पग, जघाओ
औ' उदरो वाला

अगणित कराल दाढो वाला
ऐसा विराट यह रूप देख
हैं लोक लोक भय से व्याकुल,
मैं भी हूँ भय से आतमान !

यह नभ तक फैला हुआ व्याप्त
देदीप्यमान
अगणित वर्णों से भासमान
मुख फलाये, जलते विशाल नेत्रो वाला
भीषण स्वरूप,
म अन्तरतम तक थर्राता हूँ देखदेख
हे विष्णु ! शाति औ' धैर्य्य नही धर पाता हूँ म
कपमान !

विकराल दाढ है चमक रही जिनमे भयकर
जो प्रलयकाल की महा अग्नि की भाँति
दीखते है भीषण
आपके मुखो को देख देख
मै भूल रहा हूँ दिशा ज्ञान,
जग के निवास ! देवेश ! हो रहा सुख विलीन,
हो अब प्रसन्न !

म देख रहा
राजाओ के समुदायसहित
रे सब ही वे धृतराष्ट्र पुत्र
कर रहे आप मे ही प्रवेश,
रे भीष्म पितामह और स्वय
आचार्य्य द्रोण,
वह कर्ण और

अपनी सेना के भी प्रधान योद्धा अनेक,
सबके सब ही अति वेगयुक्त
आपकी भयकर दाढो वाले भयद मुखो मे
घुसते हैं
हैं जहा चूर्ण हो जाते उनके गर्वित शिर
भीषण दांतो मे चिपके दिखते हैं मुझको
वे प्राणहीन !

हे विश्वमूर्त्ति !
जैसे नदियो के सब प्रवाह दौडते और
जाकर समुद्र मे ही गिरते,
वैसे यह योद्धा-शूरवीर समुदाय सभी
आपके प्रज्वलित मुखा बीच
करते प्रवेश !

जैसे मोहित होकर पतग हैं
दीप्त वह्नि को देख वेग से
जा गिरते उसमे औ'
हो जाते विनष्ट,
वैसे ही यह सब भी अपने अपने विनाश के
हेतु शीघ्र
आपके मुखो मे गिरते है मिट जाने को।

औ' आप सकल लोको को अपने इन भीषण
प्रोज्वलित मुखो मे ग्रसते से
हैं चाट रहे सब ओरो से, हे महाविष्णु !
आपका उग्र आलोक तेज द्वारा अपने
हैं तपा रहा सम्पूर्ण जगत को, हे विराट् !

जय नमस्कार करता हूँ मैं,
होवें प्रसन्न ! हे आदि रूप !
मै नही समझ पाता प्रवृत्ति आपकी किन्तु,
हे उग्ररूप ! हैं कौन आप ?
कहिये हे देवो मे वरेण्य
मुझको दें अपना तत्त्व-भास !

सुन कर अर्जुन के वचन दीन
भगवान कह उठे अरे पार्थ !
मै लोको का करने विनाश
हूँ बढा हुआ वह महाकाल।
इस समय लोक का करना है मुझको विनाश,
प्रतिपक्षी सेना के योद्धा
अब नही रहेगे जीवित वे,
वे नही रहेगे अब तेरे भी बिना शेष !
तू करे युद्ध या नही करे,
पर इनका होगा स्वय ध्वस !

इसलिये खडा हो जा निर्भय,
यश करले तू अब प्राप्त देख !
तू जीत शत्रुओ को समृद्ध वह राज्य भोग !
ये शूरवीर योद्धा सारे
मेरे द्वारा हैं पहले ही सब मरे हुए,
ओ सव्यसाचि ! तू तो बनजा केवल निमित्त !

ये भीष्म, द्रोण, ये कर्ण, जयद्रथ,
और अनेको शूरवीर,
मेरे द्वारा हो चुके निहत पहले ही सुन हे पाण्डुपुत्र !
तू इह मार ! अब भय मत कर !

तू निश्चय ही जीतेगा अपने शत्रु मार
संग्राम बीच ।
इसलिये युद्ध कर महाधीर !

तब वह किरीटधारी अर्जुन
केशव के सुन ये वचन
हाथ जोडे कपित, कर नमस्कार,
भयभीत हुआ सा, गद्गद स्वर,
या उठा बोल

हे अंतर्यामी ! उचित है कि
कर कीर्त्तन जग
आपके नाम का होता है मन मे हर्षित,
होता है फिर अनुराग प्राप्त,
भयभीत हुए भागते दिशाओ मे राक्षस,
औ' नमस्कार करते हैं सिद्धो के समूह ।

हे महामहिम ! आत्मा महान !
हैं आप स्वय ब्रह्मा के भी उत्पत्ति मूल,
क्यो करे नही वे नमस्कार
हे जगनिवास ! देवेश ! आप तो हैं अनत,
सत्, असत्, परे उनसे अक्षर भी तो ह
स्वय आप ।

हे आदिदेव ! हे पुरुष सनातन, परमाश्रय, हे परमधाम,
जानने योग्य, जानते स्वय, सर्वत्र व्याप्त,
परिपूर्ण स्वय हे छवि अनत !
हे हरि ! लें मेरा नमस्कार !

हैं आप स्वयं—
यमराज, वरुण, चन्द्रमा, वायु
हैं आप प्रजापति ब्रह्मा औ'
ब्रह्मा के भी हैं पिता आप !
शत नमस्कार मेरे सहस्र लें नमस्कार !
मैं बारम्बार विनीत कर रहा नमस्कार !
मेरा वंदन स्वीकार करें
जय हे विराट !
ले नमस्कार !

हे चिर अनंत सामर्थ्यवान !
सम्मुख से करता हूँ मैं वंदन नमस्कार !
करता अब पीछे से श्रद्धारत नमस्कार !
हे सर्वात्मन् ! सब ओर आपको नमस्कार !
हैं आप पराक्रम धर अनंत
सब लोकों को कर रहे व्याप्त,
हे सर्वरूप।

हे परमेश्वर !
जो सखा मान
आपके प्रभावों से अजान
मैं प्रेम या कि अपने प्रमाद से हे यादव ! हे कृष्ण ! मित्र !
हठ पूर्वक जो कह चुका मगन,
औ' हे अच्युत !
जो हँसी-हँसी मे शय्या,आसन औ' भोजन आदिक विहार
की वेला मे
मित्रों के सम्मुख या कि अकेले में ही मैं
अपराध आपके सम्मुख हूँ कर चुका दीन,
हे अप्रमेय छवि ! उन सबकी मैं
क्षमा मांगता बार-बार !

हे विश्वेश्वर !
हैं आप चराचर-लोक-पिता,
गुरू स भी गुरू है पूजनीय,
अतिशय प्रभाव वाले हैं निश्चय प्रभु महान !
लोको म है न समान आपके जब कोई
हो सकता कैसे अधिक और ?

हे विश्वमूर्ति ! आपके चरणतल
मेरी काया हुई विनत
हे स्तुत्य आपको कर प्रणाम,
प्रार्थना कर रहा आप श्रेष्ठ ! होवे प्रसन्न !
हे देव ! पिता जिस भाँति पुत्र,
औ' मित्र मित्र औ'
पति प्रिय स्त्री के अपराधो को सह लेते,
वैसे ही मेरे अपराधो को सह आप !

देखा न आज तक जो स्वरूप वह देख देख
हर्षित हूँ मैं रोमांचित हूँ,
पर मन है मेरा रहा काप,
हे जगनिवास ! देवेश ! दिखाये मुझे किन्तु
निज देव रूप ही हो प्रसन्न !
करता हूँ मै शत नमस्कार !

हे विष्णु ! चाहता हूँ देखू
यह मुकुट, शख औ' गदाचक्र वाला स्वरूप !
हे विश्वरूप !
तज कर स्वरूप यह भुज सहस्र का आदि देव !
फिर वही चतुर्भुज धरें रूप !

अर्जुन की सुन प्रार्थना कृष्ण यो उठे बोल
कर दया तुझे दिखलाया मने
आत्मयोग से यह स्वरूप
अति तेजोमय,—
निस्सीम, आदि सबका
विराट वह रूप, पार्थ !
तेरे अतिरिक्त नही कोई भी देख सका।
यह तो है लोक मनुष्यो का
इस विश्वरूप मे यहाँ मुझे देखे कोई—
अध्ययन यज्ञ का, और दान
और' क्रिया, उग्रतप, स्वय वेद के माध्यम से भी
कोई भी सकता न देख।

मेरा ऐसा विकराल रूप
यो देख न होवे तू व्याकुल या मूढभाव,
हो भीतिहीन फिर प्रीतियुक्त
इसलिये देख मेरा वह ही फिर पार्थ ! रूप—
वह शख, चक्र, औ' गदा, पद्म वाला स्वरूप।

यह कह कर सजय बोला नृप !
अर्जुन से यो कह वासुदेव ने पुन वही
निज रूप चतुर्भुज दिखलाया
औ' सौम्य रूप धर कर उसको
आश्वासन देकर, दूर किया
उसके मन से वह भय अपार।

तब अर्जुन बोला फिर स्वभाव
मेरा है मुझको हुआ प्राप्त,
यह शात मधुर आपका मनुष्यो सा स्वरूप
फिर देख हो गया शात चित्त।

बोले श्रीकृष्ण वचन ये सुन,—
प्रिय हे अर्जुन !
मेरा यह रूप चतुर्भुज भी अति दुर्लभ है
जो रहे देख,
देवता सदा मेरी इस छवि के
दर्शन को ही लालायित
रहते अधीर।
अध्ययन यज्ञ का, और दान
औ' क्रिया, तपस, या स्वयं वेद के माध्यम से भी
कोई भी सकता न देख।

पर श्रेष्ठ तपस्वी हे अर्जुन !
मैं इस स्वरूप में हो सकता हूँ प्राप्त यहाँ
प्रत्यक्ष या कि मैं ज्ञेय, या कि करने प्रवेश—
मुझमें यह है संभाव्य, पार्थ !

हे पाण्डुपुत्र ! जो मेरे ही हित, सब कुछ को
मेरा समझ करता सब कुछ,
जो मुझे प्राप्त करने को है तत्पर
मानस में लिये भक्ति,
आसक्तिहीन
जो सकल प्राणियों के प्रति है रखता न वैर,
ऐसा अनन्य वह भक्त सदा
मुझको ही होता प्राप्त अंत !



भक्ति



जिस भाँति प्रवाहित होती नदियाँ
अपना अपना नाम छोड
हो जाती सागर मे विलीन
विद्वान उसी विधि से अपने
तज नाम रूप
उत्तम से उत्तम दिव्य पुरुष परमात्मा को
पा जाता है।

[मुण्डकोपनिषद् ३।२।८]

परमात्मा म लय की भावना ने ही भक्ति को जन्म दिया, जिसमे तन्मय और प्रेम को साथ लिया गया है।

हीब्रू साहित्य यहूदियो का पुराना साहित्य है। यहाँ मैंने दाऊद नामक सम्राट् के १९वें, २३वें, २७वें, ४२वें, १०३वें गीत का अनुवाद किया है। यह गीत भक्ति से ओत-प्रोत है और पुरानी इञ्जील म ईसाईयो द्वारा भी स्वीकृत कर लिये गये हैं। कालक्रमेण इनको ईसा से लगभग ८०० से १००० वर्ष माना जाता है। इन गीतो मे यद्यपि सघर्ष का भी परिचय है, आत्म-रक्षा के लिये याचना प्रमुख लगती है, परन्तु फिर भी यहाँ, आत्म-निवेदन है, वह बहुत ही मार्मिक है, और उसमे हृदय को छू लेने की शक्ति है। यहूदी जाति मुख्यत भेड पालती थी इसलिये प्रभु की कल्पना चरवाहे के रूप मे की गई है।



प्रभु : चरवाहा

[दाऊद]



आकाश प्रदर्शित करता है प्रभु का गौरव
नक्षत्र दिखाते हैं उसके कर का कौशल,
दिन से दिन उसके ही स्वर को दुहराता है,
रजनी से रजनी उसके ज्ञान दिखाती है।
ऐसी न कही भी कोई भाषा विद्यमान
जिनमे उसका स्वर होता किंतु न श्रव्यमान।
उनकी श्रेणी भूमा पर है सम्पूर्ण व्याप्त,
उनके ह शब्द सकल जग को कर चुके पार।
रवि के हित उसने पटमण्डप
है किया एक स्थापित उनमें,
वह है दूल्हे सा निज प्रकोष्ठ से जो बाहर आता धीरे
आनद मनाता ज्यो कोई नर शक्तिमान
है जाति चला देता अपनी सामर्थ्यवान।

वह स्वर्गस्थल से चलता है,
सम्पूर्ण लोक वह कर लेता है व्याप्त पार,
उसके तापो से नही छिपा है रे कुछ भी

प्रभु का है नियम प्रशुभ्र पूर्ण,
आत्मा को परिणित करता है,
उसका प्रामाण्य विनिश्चित है,
मतिमानो को करता है वह रे सहज स्वय।
प्रभु के निर्देश सदैव सत्य,
आनदित करते मानस को
उसकी आज्ञा है अति पुनीत,
ज्योतिमय करती नयनो को।

प्रभु का भय है रे अति निमल,
वह रहता है शाश्वत अनत,
प्रभु का है न्याय अखड परम,
है सत्य और समुचित सदैव !

उनकी कामना सदैव श्रेष्ठ,
रे अधिक स्वर्ण से वही काम्य,
कचन उसके सम्मुख न श्रेय,
वह मधु से मीठी मृदुतम।

उनके द्वारा तेरा सेवक
यह हो जाता है सावधान,
उनके पालन में मिलता है
उपहार और वरदान श्रेष्ठ !
उसकी भूलो को कौन समझ सकता बालो ?
तू कर मुझको परिशुद्ध गुप्त
पापो से मेरे ज्योतिमान !

तू अहकार के पापो से
हत विनत दास की रक्षा कर,

प्रभु के सम्मुख मैंने है बस
याचना एक ही की मन से,
जिसकी प्रार्थना म सतत करूँगा बार बार,
वह यह कि रहूँ म जीवन भर
प्रभु के घर मे,
देखूँ उसका सौंदर्य सतत,
उसके मन्दिर मे रहूँ सदा जिज्ञासु सदृश।

सकट के दिवसो म मुझको
निज शिविर बीच आश्रय देगा,
अपने पटमडप के प्रदेश जो गहन गुह्य
वह मुझे छिपा लेगा उनमें,
दृढतम चट्टान मिलेगी मुझको स्थिर करती,
मैं ऊभ चूभ रे भटक न पाऊँगा निश्चय।
मेरे रिपुओं पर मेरा सिर
उन्नत दीखेगा इसीलिये
उसकी वेदी पर बलि दूँगा अपने हर्षों की
श्रद्धा से।
म गाऊँगा, सच,
प्रभू की स्तुतियाँ गाऊँगा।

हे प्रभु ! तू सुन,
जब म पुकार कर तुझे बुलाऊँ आत्तमान,
मेरे मन ने तुझ से अनुनय की हे उदार
प्रभु मैं तेरा मुख देखूगा !

मुझ से न छिपा अपना आनन,
तू क्रोध न कर, मैं सेवक हूँ,

दुतकार न तू, कर दूर नहीं,
तू एक सहायक है मेरा,
मत छोड मुझे,
मत कर तू मेरा परित्याग,
ओ प्रभु ! स्वामी !
ओ मेरे मोक्ष प्रदाता हे !

जब मुझे जनक जननी भी तज देंगे, तब भी
प्रभु के कर देंगे मुझे अभय आश्रय महान।
हे प्रभु ! तू अपना मार्ग मुझे दिखला सुन्दर
तू अपने पथ की शिक्षा दे,
ले चल तू मुझको समतल पथ म क्योंकि मुझे
घेरे हैं मेरे भयद शत्रु !

मेरे रिपुओं की इच्छा पर मत मुझे छोड,
झूठे साक्षी हैं खडे हुए मेरे विरुद्ध,
निष्ठुरता ही उनकी साँसो मे पलती है।

प्रभु अच्छे है जब शिथिल हुआ यह भाव तभी
हो गया विकल मैं मूर्छित सा,
जीवित मनुजो की भूमा मे
प्रभु का सत् ऊपर रहता है।

प्रभु की सेवा करना अविरत,
साहस मन म रखना अविकल,
वह निश्चय तुमको बल देगा,
केवल प्रभु की सेवा करना
मेरा है यह वचन एक
सुन मेरे मन !

× × ×

प्यासा मृग ज्यों निर्झर के हित तरसा करता
हे प्रभु ! मेरी आत्मा भी तेरे हेतु
तड़पती उसी भाँति,

मेरी आत्मा है प्यासी प्रभु के हेतु अरे उस
सजीवन प्रभु के हित हो,
कब आयेगा वह दिन जब मैं
जाऊँगा औ' प्रत्यक्ष वहाँ
प्रभु सम्मुख पाऊँगा दर्शन ?
मैं अहर्निशा अपने आँसू पर चलता हूँ,
औ' वे अविरत पूछा करते तुझसे फिर फिर—
तेरे प्रभु हैं वे कहाँ बोल ?

जब आतीं मुझको ये स्मृतियाँ
अपनी आत्मा को तब निज में
देता उडेल मैं सोच सोच,
मैं गया भीर के संग
गया प्रभु के मन्दिर में
स्तुतियों हर्षों से पुलकित
वह भीर जो कि प्रभु आज्ञा से
उस दिन थी प्रार्थना लीन।

ओ मेरी आत्मा !
तू क्यों इतनी विकल और
ऐसी निराश ?
क्यों तू मेरे भीतर इतनी
व्याकुल उदास ?

अपनी आशा प्रभु में केन्द्रित कर ले तू री !
उसके दर्शन का पाऊँ मैं सबल क्षण भर

इस हेतु करूँगा मैं तो उसका ही अपार
जयगान मुखर।

हे मेरे प्रभु, मेरी आत्मा
मुझमें इतनी है दीन हुई
इस हेतु करूँगा मैं फिर स्मृति
जोदन, हर्मनतिस के देशा की
और मिजर पवत की
पाता हुआ शक्ति।

तेरे जल उत्सो के प्रवाह की ध्वनि सुनकर
देता समुद्र है गहन सिंधु को आमन्त्रण,
तेरी लहरें, तेरी हिलोर
मुझ पर से निकली हुई पार।
फिर भी प्रभु आज्ञा देंगे ही
दिन में निज प्रीतिभरी करुणा कर
अमल व्याप्त,
निशि मे उस नीरव बेला म
प्रभु का ही गीत रहेगा मेरे
पास सग,
मेरे जीवन के परमात्मा!
मै तो तेरी ही स्तुति करता
वदना करूँगा रे नत शिर।

प्रभु है मेरी चट्टान सुदृढ,
मैं पूछूँगा उससे तू मुझको
हाय गया किसलिये भूल?
रिपु के आतको से व्याकुल
क्यो फिरता हूँ मैं यो
उदास?

वे करते हैं भत्सना घोर
मानो करते हैं मेरे तन मे खड्गो का
भीषण प्रहार,
हैं नित्य पूछते वे मुझसे—
है तेरा वह प्रभु कहाँ बोल ?

ओ मेरी आत्मा ! तू क्यो है
इतनी व्याकुल ?
मेरे भीतर तू क्यो इतनी विह्वल उदास ?
विश्वास अटल घर री प्रभु मे,
मैं तो उसकी ही स्तुति मे होऊँगा विभोर,
वह ही मेरे सुख का है री आधार एक,
वह भी मेरा है प्रभु स्वामी ।

× × ×

प्रभु की जय हो,
मेरी आत्मा !
जो कुछ भी है मेरे भीतर
सब उस पुनीत के नाम उचारे बार बार,
ओ मेरी आत्मा
प्रभु का वदन कर फिर फिर,
मत भूल कभी उसकी महिमा
तेरी सारी निबलताएँ
करता है वह ही क्षमा नित्य,
तेरी पीडाए हर लेता
तेरे रोगो को करता है वह सदा दूर,
विध्वसो से तेरे जीवन की करता रक्षा है सदैव,
कोमल करुणा औ'
स्निग्ध दया से तुझको वह मडित करता,

तेरे मुख को भोजन देता कितने सुस्वादु,
तेरे यौवन को कर देता वह नव ऊर्जामय बल देकर
ज्यो श्येनो की है शक्ति उमडती वेगवती।

कह सत् को है स्थापित करता
दलितो को देता वही न्याय
मूसा पैगम्बर को उसने पथ दिखलाया,
अपने नियमो से उसे किया अवगत निश्चय,
इज़रायल की सतान हुई उससे ज्योतित।

प्रभु ह करुणामय दयावान,
आता न उसे है शीघ्र क्रोध,
उसकी करुणा कितनी अपार!
वह सदा न देता दुरित दण्ड,
वह सदा नही रहता प्रक्रुद्ध,
जब से हमने हैं पाप किये
उसने न दिया है दण्ड अभी,
अपनी निर्बलताएँ निहार
उसने न दिया है हमको फल।

जिस भाँति व्योम है भूमा से इतना ऊँचा
उसकी करुणा भी है रे वैसी ही महान
उन पर जो उससे अपने मन म
डरते हैं।

प्राची से है पश्चिम जितना रे अति सुदूर,
वह सदा हमारी नियमोल्लघन की भूलें
रखता है उतनी ही दूरी पर हमसे भी।

वे करते हैं भत्सना घोर
मानो करते हैं मेरे तन मे खड्गो का
भीषण प्रहार,
हैं नित्य पूछते वे मुझसे—
है तेरा वह प्रभु कहाँ बोल ?

ओ मेरी आत्मा ! तू क्यो है
इतनी व्याकुल ?
मेरे भीतर तू क्यो इतनी विह्वल उदास ?
विश्वास अटल धर री प्रभु मे,
मै तो उसकी ही स्तुति म होऊँगा विभोर,
वह ही मेरे सुख का है री आधार एक
वह भी मेरा है प्रभु स्वामी।

× × ×

प्रभु की जय हो,
मेरी आत्मा !
जो कुछ भी है मेरे भीतर
सब उस पुनीत के नाम
ओ मेरी आत्मा
प्रभु का वदन
मत भूल कभी उस
तेरी सारी निबलताएँ
करता है
तेरी पीडाए हर
तेरे रोगो को
वि-वसो से तेरे
कोमल करुणा
स्निग्ध

जो उसकी आज्ञा का करते रहते पालन,
है जिन्हे याद आदेश सदा रहने उसके,
वह उन पर रहता है प्रसन्न ।

प्रभु ने अपना सिंहासन है
उस व्योम बीच
रे स्वर्ग सुखद मे
किया स्वय स्थापित महान,
साम्राज्य बृहत् है ये उसका
सबका शासक है वही एक ।

ओ सुनो सुनो रे तुम तन्मय
प्रभु का नीराजन करो विनत,
हैं देवदूत उसके महान
अति शक्तिमान
वे उसकी आज्ञाओ का पालन करते हैं
उसके शब्दो को प्रतिपालित करते,
उनकी भी तुम वन्दना करो ।

प्रभु की स्तुति करो,
करो उसके उन ज्योतिमय सेवको
देवदूतो की भी,
वे उसकी इच्छा का ही करते अभिनन्दन ।

उसके महान साम्राज्य बीच
जो यथास्थान है रे सब कुछ
उसका वदन तुम करो दीन,
ओ मेरी आत्मा !

[उन्यासी

जिस भाति पिता होता निज शिशुग्रो के प्रति रे
मन मे दयालु
जो डरते है प्रभु से उन पर
वह भी करता है दया सतत रे
उसी भाति ।

यह हमे जानता है,
अवगत है उसे हमारी सीमाये,
है याद उसे,
हम तो केवल हैं माटी ही ।

मानव जीवन,
यह आयु घास के है समान,
वह, खेतो मे उगते कोमलतम
कुसुम सदृश
करता है सुखमय सवद्धन ।

ग्राती बयार, चलती उस पर,
ग्रौ' दूर निकल जाती सुदूर,
पर कुसुम जहा पर खिलता है
होता न वहाँ यह ज्ञान भास ।

पर जो उस प्रभु से डरते हैं,
उन पर शाश्वत से शाश्वत तक
होती हैं प्रभु-करुणा ग्रपार,
पीढी दर, पीढी सत् रहता
जीवित ग्रखड ।

जो उसकी आज्ञा का करते रहते पालन,
हैं जिन्हे याद आदेश सदा रहते उसके,
वह उन पर रहता है प्रसन्न ।

प्रभु ने अपना सिंहासन है
उस व्योम बीच
रे स्वर्ग सुखद मे
किया स्वयं स्थापित महान,
साम्राज्य वृहत् है ये उसका
सबका शासक है वही एक ।

ओ सुनो सुनो रे तुम तन्मय
प्रभु का नीराजन करो विनत,
हैं देवदूत उसके महान
अति शक्तिमान
वे उसकी आज्ञाओ का पालन करते हैं
उसके शब्दो को प्रतिपालित करते,
उनको भी तुम वन्दना करो ।

प्रभु की स्तुति करो,
करो उसके उन ज्योतिमय सेवको
देवदूतो की भी,
वे उसकी इच्छा का ही करते अभिनन्दन ।

उसके महान साम्राज्य बीच
जो यथास्थान है रे सब कुछ
उसका वन्दन तुम करो दीन,
ओ मेरी आत्मा ।

[चन्यासी

तुम प्रभु की वन्दना करो।
हे अभिनन्दन !

× × ×

हे प्रभु ! तुम मुझको खोज चुके,
तुमको तो मैं अनजान नही,
मेरा उठना बठना सभी है तुम्हे ज्ञात,
मेरे सुदूर जाते विचार भी
नही अपरिचित हैं तुमको,
ये मेरा तन, ये रोम रोम
है तुम्हे ज्ञात।

मेरे पथ पर हो तुम्ही व्याप्त,
मै सोता हूँ तब भी तुम लेते मुझ देख,
मेरे मन मे कुछ भी तुमसे है नही छिपा,
मेरी जिह्वा पर नही एक भी शब्द जिसे
हे प्रभु ! लेते तुम नही जान,
सवज्ञ तुम्ही !
मेरे आगे पीछे का तुमने ही जग मे
सयोजन सारा किया आप,
मुझ पर तुमने ही धरा हाथ।

यह ज्ञान कि तुम सब जान रहे,
मुझको लगता कितना अद्भुत !
यह कितना ऊँचा भाव कि मैं
इस तक पाता हूँ पहुँच नही।

ओ तेरी इस चेतना व्याप्त
से दूर कहा मैं हो सकता ?

मै कहा उपस्थिति से तेरी
जा सकता हूँ अब परे कही ?

यदि मैं अम्बर मे उठ आऊँ
तो तू है वहा स्वय पहले,
यदि नरक बीच जा मैं सोऊँ
ऐ रे ! फिर भी तू वहाँ प्राप्त ?

यदि लेकर मै ऊषा के पखो को जाऊँ
उड कर समुद्र के पार कही पर छिप जाऊँ
तो तेरा हाथ वहा भी पथ दिखलायेगा,
तेरा दक्षिण कर लेगा मुझको वहाँ थाम ।

यदि कहूँ कि निश्चय
तिमिर घेर लेगा मुझको,
तो रजनी भी बन जायेगी
उजियारी मुझको वहाँ घेर ।

ऐ रे ! यह अँधियारा न छिपा
सकता है तेरे नयना से,
है निशा उजागर होजाती दिन के समान,
तुझको प्रकाश औ' अधकार
दोनो समान ।

तेरे हाथो म है मेरी सारी लगाम ।
जब था मै मा के गर्भ बीच,
तूने ही तो था ढँका मुझ ।

[दक्यामी

जय हो तेरी ! आतक भरा मैं हूँ कितना
आश्चर्य्यजनक निर्माण एक !

अद्भुत हैं तेरी रचनायें,
मेरी आत्मा इसका अनुभव
करती है कितनी पूर्णतया !

जब मैं गोपन एकात बीच था हुआ
विनिर्मित तब भी तो
मैं जिस पदार्थ का बना,
छिपा तुझसे न रहा,
निम्नातिनिम्न वसुधा के नीरव स्तरो बीच
जब अतिकौशल से था मेरा निर्माण हुआ
तुझको कुछ भी था नही अजाना
उस क्षण भी।

जब हुआ नही था वह पदार्थ आकार व्याप्त
सब था अपूर्ण
तब भी तेरी आँखो ने था
देखा मुझको,
मेरे ये सारे अग-अग
तेरे लेखे थे लिखे हुए ,
जो क्रम से निर्मित हुए, किन्तु
जब नही बने थे तब भी थे, वे
तुझ ज्ञात !

तेरे विचार भी मुझको हैं
कितने अमूल्य,

हे प्रभु ! सच है कितनी महान
उनकी विराट यह पूरण राशि !

यदि गिनूँ उन्हें, तो वे हैं अधिक
धरा के बालू कण से भी,
जब जगता हूँ,
तब भी रहता हूँ मैं तो तेरे पास, पास !

सचमुच ऐ प्रभु ! तू दुष्टो का वध करता है,
अतएव हिंस्र जन ! तुम मुझसे अब रहो दूर !
प्रभु ! वे तेरे कितने विरुद्ध
कहते है कैसी कुटिल बात ?
तेरे रिपु लेते हैं वे तेरा नाम व्यर्थ ।

जो तुझसे करते घृणा
नही क्या करूँ घृणा उनसे हे प्रभु !
जो उठते है तेरे विरुद्ध
क्या मुझे न होता देख दृश्य वह
कठिन क्लेश ?

है घोर घृणा उनसे मुझको,
मैं शत्रु मानता हूँ उनको !
ले मुझे खोज ! हे प्रभु ! ले तू
मेरे मन को निहार,
कर देख परीक्षा औं' मेरे,
प्रभु ! स्वयं देखले तू विचार ।
यदि मुझमे हो कोई विकार,
तो मुझको अपने शाश्वत पथ मे
तू ले चल !
तू ही ले चल !



[विरासी

खोज



सदा सखा संगी दो खग हैं
एक वृक्ष पर ही रहते हैं,
एक स्वाद ले ले कर उसके फल खाता है,
किन्तु दूसरा खाये बिना देखता रहता।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ४।६)

आत्मा और परमात्मा को एक ही समान माना गया है। उपनिषद् के इस विचार ने भारतीय जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है। सूफी कवियों ने भी इसे अनुभव किया था। ईरान के सूफी कवियों में दिव्य दर्शन पान की वही परम्परा मिलती है, जो भारतीय संतों के बारे में भी दिखाई देती है। फारसी कवि फरीदुद्दीन अत्तार एक साधु-जीवन व्यतीत करने वाले कवि थे। मन्तिकुत तामिर की यह कविता एक अद्भुत दृश्य प्रस्तुत करती है जिसमें गुरु और परमात्मा से आत्मा का तादात्म्य दिखाया गया है। अत्तार को आक्रमणकारी मुगलों ने १२३० ई० में मार डाला था।

अनुवाद में मैंने फारसी शब्दों को हटा दिया है, क्योंकि उनसे हिन्दी में व्याघात उत्पन्न होता था। इसीलिये पक्षियों के नाम भी बदल दिये हैं। वैसे तो सर्वत्र ही मैंने विदेशी स्पर्शों को अलग किया है, ताकि एकत्व में बाधा उपस्थित नहीं हो।

प्रस्तुत कविता में आत्मा की यह यात्रा बहुत ही रोचक बन पड़ी है। और अंत में जब कवि अपनी कल्पना के शिखर पर पहुँचता है तब उसमें एक महान् दार्शनिकता फूट पड़ती है।



रहस्यमय पक्षी

(फरीदुद्दीन अत्तार)

●

बीती रजनी
जन्मा प्रभात
अवनी अम्बर के बीच
नवल आलोक स्नात,

जागा जीवन का अंततम
अपने रहस्य की छाया औ'
प्रतिमूर्त्ति देखने को नवीन।

तरु-तरु पर खग कलरव करते
अपना अंतस् देत उँडेल
निमल क्रीडारत शिशुओ से
वे ज्योति और कुसुमो की भाषा मे मुखरित।

बहु विविध रंग, स्वर है अनेक,
उद्देश्य सभी के भिन्न भिन्न,
पर सबके स्वर जा मिलते है
बन एक शब्द

[पचासो

वदना निरत,
उगते रवि की गौरव गाथा गाते तन्मय।

म्रालोक प्रखर हो चला दिवस,
उठ चले विहग नभ म विभिन्न पथ लिये
समोरण पर फर फर,
वन, पवत पर, मैदान, खेत, निर्भर झरझर श्रो' झोल
सभी पर मँडराये दानो की करते
खोज विहग,

थी चाह किसी को नीड बनाने को
कोमल टहनो की हो
तो कोई पत्ता ढूँढ रहा,
अपने घर मे मिल सके ताकि
आनन्द और
चल सके गृहस्थी सुख से भर।

जब सध्या मे दो बेलायें मिल जायेगी
तारिल अवगुण्ठन आकर सबको ढँक लेगा
वे पहले ही चल पडते घर
सध्या की छायाओ सी फैली लम्बमान
बाँहो मे करते है वे प्रिय विश्राम शात
नव सुख की आशाओ से भर
रजनी की नीरव निद्रा मे होते निमग्न।

पर कुछ है जो करते प्रकाश की
सतत खोज,
उडतें मेघो को, पखो की भर कर उडान
नापते विजन ऊँचाई तक,

हिमगिरि के शृङ्गो से ऊपर जाते उलांघ,
अपने अनदेखे तारे को खोजते हुए
वे दूर दूर तक जाते हैं औत्सुक्य-लीन,
कुछ ले चलते अपने दल को
अनजाने देशो म बढते
परदेशी तीरो पर उडते है कही दूर,
बहते न जहा कोई निर्झर
दिखता न पवन का जहाँ छोर,
मदान हरे, पर्वत न झील, कोई न जहा—
बस एक श्वेत निस्सीम सिंधु
काले अनत के तीरो मे दिखता अछोर।
दिन में चलते
निशि मे चलते
अविराम अरुक,
जाने कितने ही पथ मे ही मिट जाते हैं,
घेरा करती है भूख, शीत बन दुर्निवार
कांपते विहग मन मे सशक—
बिछुडेंगे अपने वृक्षो के परिचित साथी,
स्मृतिया हैं उन्ह सताती घिर घिर
बार-बार,
फिर नही मिलगे अपने सगी
मोद पूर्ण।

था एक कही पक्षी, जिसकी गाथा मैं था
सुन चुका कभी,
अज्ञात और वह था अनाम,
जिसने ध्रुव से ध्रुव तक सारा जग
लिया देख

जो आत्मध्येय के उपवन मे था
पहुँच गया, हो पूर्ण काम,
पर जिसने तब था छिपा लिया
अपने को दिन औ' रजनी की आखो से
होकर परे ओट,
कोई न बता सकता मुझको
था कहा निवसता वह पक्षी।
पर जब दिन औ' रजनी मिल
बनते एक रूप,
रवि, शशि, तारा, पृथ्वी सबही
दिक् और काल की बाँहो मे
आलिगन कर
मुस्काते मिल कर सङ्ग-सङ्ग,
जब धूम और ज्वालाग्नि तथा
मथर तरङ्ग औ' पवन चपल,—
अज्ञात अपरिभाषित अजान
देदीप्य एक आलोक मुखर मे
मिल जाते—
कहते थे—यह धरती विचित्र सी
हिल उठती थी जागी सी
तन एक शब्द की प्रति-ध्वनि सी सुन
कर सहमा
औ' कुछ थे, जो उस अद्भुत से पक्षी का
दर्शन भी थे कर चुके प्राप्त।

यो यही सोचता बार बार
मैं डूब गया निद्रा में बेसुध सा होकर,
तब जगा स्वप्न—

देखा मैने,—मैदान एक
तारो से गुफित सा वह मनहर
लगता था
कितने ही पक्षी वहाँ दिखाई दिये मुझे,—

शुक, पिक, कोकिल,
मरकत पखो वाला मयूर,
वह खग विचित्र जो पृथ्वी पर है एक
अकेला ही होता
औ' अत काल मे जब मरता
तब हो उठता है भस्म और
उसमे से ही है नया निकलता वैसा ही,
औ' ताम्रचूड, औ' श्यन, गिद्ध औ' अबाबील,
कितने न वहाँ थे तरह तरह के
खग अनेक,

वे रगबिरगे
भाँति भाँति के गाते
अद्भुत मधुर गीत,
ऊपर सबसे था एक विहग
शिर पर था जिसके शिखर चूड
लाबे पर जिसके थे ज्योतित
चाँदी के सिहासन पर था
बैठा गभीर—

अति सुधी विचक्षण सुलेमान
नृप, था उसको ले गया सग
जब गगन विजन के पथो को
लाँघते समय
थी हुई उसे पथ-दर्शक की आवश्यकता।

[नवासी

अब ज्योति चूड वह, उडने मे
सबने अपना नेता माना,
वह उड्डीयन मे था प्रवीण,
उड्डीन, डीन औ' डीन-डीन,
औ' डीनो डीयन कुशल गहन
सब विधियो मे था पारगत ।

वह यद्यपि भीड मे बैठा था,
फिर भी था एकाकी सबसे,
परिवर्तित उसका हुआ रूप था, फिर भी था वह
अविज्ञात,

मै बैठा सुनता रहा वहाँ,
प्रत्येक शब्द मुझको लगता था
प्रतिध्वनि सा ।

बोले विहग,
चाहते सभी थे प्रभु चुनना
जानते न थे
किसमे थी मेधा यह मनोज्ञ
जो विभु से पाई हुई शक्ति अपनी महान का
सदुपयोग करना सम्यक्
था स्वय जानता
स्थित प्रज्ञ
जो उन्हें धरणि से पहुँचाने मे स्वर्गांचल मे
था समय ।

तब ज्योतिचूड बोला, सु वि
था अद्भुत ।
नोहार

वह विजन गुफा थी गुप्त जहाँ
उसका निवास था, चट्टानो,
लहरो, पवनो से रक्षित था,
उसके थे लोचन विद्युत से,
थे श्वास कि जीवन और मृत्यु का
अनल उन्ही म पलता था।

यदि उसे चुना जायें राजा
तो सर्वश्रेष्ठ।
अपने पखो को ले पसार
उड चले विहग अब
उसी द्वार।

उस पक्षी का था नीड जहाँ
वह स्थान ज्ञात था उसे और
अनुनय कर उसे मना लेने की
कला जानता था वह, पर
पथ था निजन
अति कठिन शीत से ग्रस्त भयद
छाया था उस पर अधकार,
केवल वे ही चल सकते थे
जिनमे भय की थी नही रेख,
पथ म था कोई नही शब्द
कोई न दृश्य
सब सूना था,
अपनी ही उखडी सासा के
अतिरिक्त नही था वहा और।

सुन ज्योतिचूड की बात सभी ने
कर उसको स्वीकार लिया,

[इन्यानने

उड चले भूमि से ऊपर उठ कर
वे तुरत,
आये प्राची मे वहाँ, जहाँ थे
देश धूप के उजियाले,
औ' मैं
अधमाधम, अति निकृष्ट
उनके पीछे चल पडा सग
पीछे की पाँतो के पीछे।

दिन था प्रकाशमय
और गगन था रे निमल,
आल्हादित थे अपने मानस,
हल्के थे डैने और पख।
यो पहाडियो पवतो आदि से ऊपर हम
उड गये शीघ्र ऊँचे ऊचे,
तब धूप होगई उष्ण तनिक जब पृथ्वी पर
रेगिस्तानी घाटी आई
कर चले पार हम उसे चलाते पखो को
उठ भभक आ रही थी फिर फिर,
कुछ खग मूर्छित हो गये,
गिर गये कुछ अचेन,
औ' कई याद कर उठे वहा
उन मीठे सु दर दृश्यो की
जो पीछे थे वे गये छोड,
वह स्मृतिया टीस बनी कसकी।

दुपहर आई,
मात्तण्ड हो गया व्योम बीच,
ज्वालाओ के से झोके बन

उन्मत्त पवन के उठे हमें तब
घेर घेर।

तब नयन चौंधिया गये हमारे ऊष्मा मे
थक गये पख, कँप गये हृदय,
भारी मन उडते रहे दीन हम क्लात, भात,
कितने ही खग तब छूट गये
पीछे पीछे,
कुछ लौट गये,

जब सध्या की छायाए गहरी हुई घनी
तब भीड हो गई थी अदृश्य,
कुछ चुने हुए खग रहे शेष थे
वहाँ सग।

रवि डूब गया,
दक्षिणी समुद्रो से बहती
आई बयार
कस्तूरी और मदिर गधो से
भारिल सी।
जल पर बहते अस्मिल पदार्थ की
सुरभि होगई
अतराल मे व्याप्त व्यस्त,
गोधूलि समय की नयनहारिणी छाया ने
भरदी अपनी मनहर सुवास।

तब प्रेम-पिपासी कोकिल ने
छेडी अपनी मोहक तानें

गाई गुलाब की कहानिया
प्यारी प्यारी
बीते दिवसो की कसक जगादी
लोरो पर,

चादनी रात मे कुञ्जो की
यादें छेडी
वेदना भरी उच्छ्वसित हो गई
वह विकला,

तब आर्त्त श्येन का हृदय उठा सहसा कराह,
खग एकमात्र भस्मोज्जीवित भी हुआ दीन,
शुक की पीडा भी प्रगट होगई
शब्दो मे,

वे लौट पडे
उड चले पुन घर को अपने ।
तज गये खोज,
जिसमे इतना था श्रम विषाद ।
सगी अपने कम तुरत होगये उडते म
वे गये छूट ।

जब सध्या ने अपना अवगुण्ठन
उठा दिया,
तब झुका पख अपने हम
उत्तर दिशा ओर
बढ चले सग,

देखा मैंने—
जो भीड संग मे आई थी
अब कही नही थी आस-पास,
नीले निर्जन नभ के नीचे
अब केवल दो थे वहाँ शेष—
आगे आगे था ज्योति-चूड
पीछे पीछे उडता था मैं।

नीरव रजनी के कक्षो से
भीगे तारे दीखे टिमटिम,
उडते थे हम अब भी अनुक्षण,
पृथ्वी सुदूर दिखती थी अब
टिमटिम करते से तारे सी
लघु बिंदुमात्र ।

आई फिर आधी रात और
धीरे धीरे
रूपा-भीने कुहरे से तन्द्रिल ज्योति लिये
चंदा उठ आया, औ' नभ म
उजला माथा टेका उसने
सबको निहार,

तब ज्योति-चूड बोला मुझसे
क्या तुझे दीखते हैं ऊपर के वे पर्वत ?
उनकी अपार श्रेणियाँ पार कर
वहाँ बीच मे
रहता वह अद्‌भुत पक्षी
एकाकी ही,

है तुझे ज्ञात ?
घाटियाँ अनेको अभी पार करनी हमको,
इन चट्टानो की गहन ढेरियो के ऊपर
भरनी उडान,
फिर उत्तर खोजती है उसकी वह
निभृत गुहा,
जो पवनो औ' लहरो के छोरो पर दिखती।
भय मत कर,
आ मेरे पीछे,
अब तू देखेगा वह जिसको
देखा न किसी ने भी अब तक,
है अनुपमेय।

पौ फटती थी अब पूरब मे,
दुगना उछाह भर गया हमारी
आशा में,
कितनी ही वे घाटियाँ पार करदी हमने
कितनी पहाडियाँ, कितने ही पर्वत
हमने डाले उलाघ,
क्षण भर न लिया विश्राम कही उस
अपनी एकाकिनि उडान मे सततलीन,
तब जा पहुँचे इतने ऊपर इतने ऊपर
रे जहाँ ऊँचाई नक्षत्रो की झिलमिल काया को
बढ कर थी रही चूम,
रुक गये वही पर और झुके क्षण भर मे हम
उतरे नीचे हम फरफर कर
मरकत वर्णी था एक द्वीप
नीलम की झील उसे घेरे थी शोभमान,
पर नही एक लहरी उठती हिलती उसम

नीरव प्रशांत था वह प्रसार
मन सा उदार,
उतरे उस पर तब हम दोनो
सरके समीप,
देखा हमने तब एक दूसरे को गम्भीर
मैं चकित रह गया देख लोचनो म उसके
दपरण विंबित सी थी मेरी ही आकृति सी,
तब लगा मुझे
वह था मुझको परिचित वर्षों से
युग-युग से,
जब वह बोला
तब लगा मुझे मैं सुनता था
अपना ही स्वर
जो प्रतिध्वनि बन कर
निकल दूसरे के उर से
जो अब बाहर सुन पडता था
मेरे उर मे वह नाद व्याप्त था पहले से
फिर भी मुझको अपने से बाहर लगता था।

बोला वह 'ले! वह ही रहस्यमय पक्षी है!
तू उसे देख!'

आंशिक सा सुन पाया उसको
आंशिक सा अनुभव किया उसे,
देखा कि झील के वक्ष बीच
लहरी सी कांपी एक और फिर
गई फैल,
टूटा स्तर औ' उठ आई आकृति एक
धर लिया जिसने अद्भुत रूप आप।

[सतानवे

क्या सचमुच था मैं देख रहा ?
था कौन, कौन वह जो मुझको था रहा देख
अपलक ऐसे निज नयनो से
जिनमे अपार था प्रेम अतल गभीर स्निग्ध ?
उसका उत्सुक आनन निहारता रहा स्तब्ध मैं
निर्निमेष,
फिर चकित हो गया उसके भी नयनो मे जब
दर्पण बिंबित सी छवि दीखी
जैसे वह थी मेरी अपनी,

तब लगा कि अपने जन्मो का
शाश्वत रहस्य
पृथ्वी के छोरो पर बिखरा
था नही ज्ञात हम सबको भी ।
वह ज्योतिचूड औ' वह रहस्यमय पक्षी औ'
मैं, सब थे केवल एक, एक ही
उस अनत मे, शाश्वत मे ।

और आत्मा की उस दिव्यदृष्टि मे सहसा ही
दिख गया, मुझे वह प्रिय उपवन
जो हम सबके ही लक्ष्यो का था एक बिंदु ।
तब पडा सुनाई मुझे एक गभीर शब्द
'आश्चर्य देख तू एक नाम का, ले निहार !
सब अलग, कि तु फिर भी सदैव
सब वही एक ।

अपनी पागल तृष्णाओ औ' आशाओ का
कर परित्याग,—
वह तेरी लोलुप अनल शिखा का सघन धूम,—

निज प्रेम और निज घृणा कठिन की मर्मर तज,
अवसादों के उच्छ्वास, भाग्य का भय तज दे,
तू गहन निराशा की घाटी कर पार और
ऊपरी पवन पर ऊँचा चढ़ तू उठ ऊपर,
औ' सच्ची दवी दीप्त दृष्टि से ले निहार
सर्वात्मभूत, शाश्वत गगन म जीवन का
जाग्रत रहस्य ।'

म जगा और देखा मैंने
दिन का प्रकाश,
तब लगा मुझे ज्यों कहता था वह
मम उर से,—
'तो देख सत्य को, और ध्येय की ओर सतत
चलता चल तू
है तेरी आत्मा का यह ही सारा रहस्य !'



वह अब न देख पाता हूँ मैं
रह कर भी इतना निर्निमेष।

नभ में आता है इंद्रधनुष
होता विनोद,
खिलते गुलाब ले छवि अपार,
निर्मेघ व्योम में शशि उजास
कमनीय कान्तिमय अमृत का
वर्षण करता है रसभीना,
तारिल निशीथ में उन फैले
निस्तब्ध जलों पर टिमटिम कर
झलमल करते आलोक बिंदु
मोहक मनहर मुदमान मौन,
आलोक किरण रवि की झरती हैं
स्निग्ध स्पर्श
गौरव अखंड का बनी जन्म,
पर जहाँ कहीं भी मैं जाता
मुझको लगता
इस वसुधा से उठ गई कहीं
वह विभवान्विति, वह गौरव है
होगया दूर।

मृदु कलरव कर गाते विहग
आनंद मुखर अपना मीठा-सा
मधुर गीत,
कूदते खेल
मेमने मृदुल
भागते चपल
ज्यों प्रिय मृदंग वंशी-रव से
उत्फुल्ल-प्राण,

केवल मुझको
केवल मुझको हो आया है कैसा विषाद
कैसा अवसाद मलिन विचार,
समयानुकूल उद्गार एक दे गया शांति
मैं फिर दृढ़तर,
खड्डो मे छलछल करता जल
करता निनाद उच्छल अपना
कुसुमित सुषमा के माध्यम से
कर तूर्यनाद,
मेरा विषाद
ऋतु के सुख म
धो लेगा अब न विषाद मग्न,
पवत पवत
उठती प्रतिध्वनि
गूंजती दूर तक रे अपार,
निदिया के खेतो से झूमी
आती मुझ तक कोमल बयार,
भूमा समस्त
आनद भरी,
पृथ्वी सागर सब मे हिलोर
भर गई एक
हर्षातिरेक हो गया व्याप्त,
मधुऋतु के मन मे रागात्मकलय
किये हुए है सकलजीव,

ओ शिशु कोमल ! आनदपुत्र !
मुझको सुनने दे अब तेरी
मीठी किलकारी बार बार,
ओ चरवाह ! सुख-भरे हृदय के
घर उदार !

[एक माँ तीर

वह अब न देख पाता हूँ मैं
रह कर भी इतना निर्निमेष।

नभ मे आता है इन्द्रधनुष
होता विनोन,
खिलते गुलाब ले छवि अपार,
निर्मेघ व्योम मे शशि उजास
कमनीय कान्तिमय अमृत का
वर्षण करता है रसभीना,
तारिल निशीथ म उन फले
निस्तब्ध जलो पर टिमटिम कर
झलमल करते आलोक बिंदु
मोहक मनहर मुदमान मौन,
आलोक किरण रवि की झरती है
स्निग्ध स्पर्श
गौरव अखड का बनी जन्म,
पर जहाँ कही भी मै जाता
मुझको लगता
इस वसुधा से उठ गई कही
वह विभवान्विति, वह गौरव है
होगया दूर।

मृदु कलरव कर गाते विहग
आनद मुखर अपना मीठा-सा
मधुर गीत,
कूदते खेल
मेमने मृदुल
भागत चपल
ज्यो प्रिय मृदग वशी-रव से
उत्फुल्ल प्राण,

केवल मुझको
केवल मुझको हो आया है कैसा विषाद
कैसा अवसाद मलिन विचार,
समयानुकूल उद्‌गार एक दे गया शांति
मैं फिर दृढतर,
खड्डो म छलछल करता जल
करता निनाद उन्छल अपना
कुसुमित सुषमा के माध्यम से
कर तूर्यनाद,
मेरा विषाद
ऋतु के सुख मे
धो लेगा अब न विषाद मग्न,

पवत पवत
उठती प्रतिध्वनि
गूँजती दूर तक रे अपार,
निंदिया के खेतो से झूमी
आती मुझ तक कोमल बयार,
भूमा समस्त
आनद भरी,
पृथ्वी सागर सब मे हिलोर
भर गई एक
हर्षातिरेक हो गया व्याप्त,
मधुऋतु के मन मे रागात्मकलय
किये हुए हैं सकलजीव,

ओ शिशु कोमल ! आनदपुत्र !
मुझको सुनने दे अब तेरी
मीठी किलकारी बार बार,
ओ चरवाहे ! सुख भरे हृदय के
घर उदार !

ओ वरदानों से ओत-प्रोत
जीवो ! मैंने है सुना मुग्ध
जब तुम उठते हो एक दूसरे को पुकार,
मैं देख रहा आकाश स्वर्ग
हँसते विभोर
आनंद तुम्हारा देख देख।

मेरा मन भी इस सुखद तुम्हारे
उत्सव का हो एक अंग,
मेरे सिर पर शोभित है देखो कुसुम हार,
वरदान रूप तव पूर्ण फुल्ल—
अनुभव करता हूँ रोम-रोम मे
मैं समस्त,
मेरे अंतस् म रम रम कर भरता है वह,
ओ रे दुर्दिन ! यदि मैं उदास होऊँ इस क्षण
जब प्रकृति मुखर के महाक्रोड में
वसुंधरा
इस मधुर उषा का करती है शृङ्गार स्वयं
हैं खेल रहे शिशु पावन
दिक् दिक् झूम झूम,
सौ सौ सुन्दर घाटियां भरी हैं
फलों से
महमह करते इन मृदुल मृदुल से कुसुमों से
सुनहली धूप की मृदु ऊष्मा भरती है
स्निग्ध सलोनापन,
माँ की बाहों पर पुलक
शिशु उछल रहे हैं रे कोमल,
सुनता हूँ, मैं सब कुछ सुनता
आनंद भरा अंततम तक !

पर इन अगणित तरुओं में से
है एक दिलाता याद मुझे
है एक खेत जो देख चुका मैं पहले से,
दोनो कहते है यही कि कुछ है
बीत गया।

यह पैन्सी पुष्प चपल, मेरे
चरणों के सम्मुख फूल रहा
है वही कहानी दुहराता
वह स्वप्निल दैवी ज्योति कहा
होगई लीन ?
वह वैभव, गौरव और स्वप्न
अब कहा गये ? हो दूर दूर !

है जन्म हमारा एक नीद, विस्मरण एक
जिस आत्मा का होता है अपने साथ उदय,
अपने जीवन के तारा का
है अस्त कही अन्यत्र दूर,
वह आता है अति रे सुदूर से
नही पूर्ण विस्मरणलीन
रे नही दिगम्बर-पूर्णतया,
हम परमात्मा से आते हैं बन
मेघ घुमडते वैभव के,
वह ही है अपना आदि गेह
शैशव मे स्वर्ग बिखर, रहता
है पास हमारे वहा सग !

वदीगृह की छायाये फिर
बढते बालक को धीरे धीरे
फिर लेती है घेर घेर।

पर वह निहारता मुखर ज्योति,
औ' ज्योति स्रोत
देखता परमहर्षित तन्मय,
यौवन आता है औ' प्रतिदिन
वह उदय भूमि से होता जाता
और दूर
फिर भी रहता है प्रकृति-पुजारी-सा
मन मे,
अपने दैवी-दर्शन पाता
उस पथ पर ही चलता रहता
रे मधुर मधुर,
पर धीरे धीरे मनुज देखता
ज्योति तिरोहित हो जाती
साधारण-दिन के ही प्रकाश मे
खोजाती, दिखती न और।

पृथ्वी अपनी गोदी अपने ही
अगन सुखो से भरती है
अपनी ही सृष्टिसहज मे उसकी
बसती है चाहना कई,
माता की ममता जैसी कुछ लेकर निज में
आदर्श ध्येय लेकर ऊँचा
वह धाय सदृश पालन करती
अपने पालित शिशु इस मानव को
है विस्मृत करवा देती—
वे वैभव जिनका होता उसको ज्ञान, और
वह ठौर जहाँ से आता वह
उस पूर्णविभवमय महा-महल की
स्मृति को भी करती विलीन।

वह देखो शिशु
छह वर्षों का कोमल प्यारा
कितना छोटा-सा मृदुल अग
सारे नव-जात मधुर पुण्यो से भरा हुआ !
माँ के मीठे चुम्बन अपार
अकित उस पर,
औ' स्नेह-ज्योति गिर रही
पिता के नयनो से जिस पर अनुक्षण,
देखो उसके पगतल, कोइ योजना या कि
रें रेखाकन,
मानव-जीवन के उसके किसी स्वप्न का कोई
एक अश
नव प्राप्त ज्ञान की मधुर कला से
स्वय जिसे उसने दी है आकृति कोइ,
कोइ परिणय था रे उत्सव,
दुख वेला, या अतिम यात्रा,
उसने है उसका हृदय कर लिया पूर्ण व्याप्त
अपने गीतो को उसके ही अनुकूल रचा करता रह रह,
औ' प्रेम या कि सघर्ष या कि व्यापार सुघर के
ही सभापण के 'नुकूल
अपनी वाणी को भी वह
कर लेगा समथ,
पर अधिक दिनो की नही बात
यह सब भी पीछे छूटेगा,
तब हृप गव से यह छोटा
अभिनेता लेगा नया रूप,
यो समय समय पर इस 'प्रहसन' मे
भिन्न भिन्न जन से मिलता
हो जायेगा वह स्वय वृद्ध,

जीवन लाता है जरा संग ही
अपनी ही सामग्री में,
बीतेगा यह सारा जीवन
ज्यों अनथक और अनंत एक थी
नकल मात्र।

ओ ! तू ! जिसका बाहरीरूप
भीतर की उस आत्मा की सारी मानवता को
छिपा रहा,
तू सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक एक
जो उत्तराधिकारी समस्त का आत्मरूप,
तू अंधों में है नयन दीप्त,
तू शांत बधिर,
पढ़ लेता है गंभीर अतल को भी अनंत।
वह शाश्वत चेतन तुझमें भी लहराता है—
ओ शक्तिमान पैगम्बर ! हे ऋषि पूर्णकाम !
तुझमें वह सत्य निहित हैं जिनको—
रहे ढूंढते हम हैं जीवन अपना सारा—
रहे विला औ'
भटक रहे अँधियारे में,
रे अंधकार में मूक कब्र में रहे डूब,
ओ ! तू ! जिस पर तेरी प्रज्ज्वलित अमरता
दिवस सदृश है फैल रही,
तू है जैसे हो किसी दास पर कोई प्रभु,
वह सत्ता है जिसको न सुझाया जा सकना,
ओ रे लघु शिशु ! तेरे अस्तित्वमात्र में ही
वह स्वर्ग-जात स्वातंत्र्य लीन
उसके गौरव से ही अखण्ड है शक्ति
व्याप्त तुझमें अघोर,

तू क्यों इतनी सच्चाई से
दुख पाकर भी जाग्रत करता
उन वर्षों को
जो ले आते हैं भार जिन्हे ढोना ही पडता
है निश्चय ।

तू अपने ही वरदानो से
अनजान बना क्यो रहा जूझ ?
रे शीघ्र सकल पार्थिव बधन
तेरी आत्मा को ढँक लेंगे,
औ' परम्परा आचार सकल
तुझ पर छायेगे बन कर भारी एक बोझ,
भारिल तुषार से अधिक
गहन गहरे स्वयमपि इस जीवन जैसे
तुझको वे लेंगे दबोच !
ओ हृष ! हमारे अगारो मे भी कोई
जीवित बन कर ही रहता है
है प्रकृति अभी भी कर लेती रे स्मरण आप
उसका जो चपल पलायन करके
छिपता है !
अपने अतीत के वर्षों की स्मृतियाँ मुझ मे
पालती एक
कल्याण निरतर, अविरल आशीर्वाद एक
वह पुण्यरूप, निश्चय ही वह है स्तुत्यरूप
आनद और स्वातन्त्र्य, यही हैं
शैशव के अति सरल धर्म
हो व्यस्त या कि विश्राम यही है एक रूप,
उर में नव पख फडफडाते खग शावक
सी आशा करती किलोल

पर मैं इसके हित नही कर रहा स्तुति, न
हो रहा हूँ कृतज्ञ,
पर वे हठ पूर्ण प्रश्न जो करते हैं अवाक
इस वाह्यरूप, चेतना आदि के विषयो पर
अपनी निर्बलताएं दिखलाते, औ' वे सब
जो हमसे हैं हो गये लुप्त,
अनजाने विश्वो मे विचरण करते
प्राणी की भूलें बार बार,
वे प्रवृत्तियाँ अति उच्चस्तरी
जिनके सम्मुख यह मर्त्यप्रकृति अपनी होती
अपराध चकित सी कपमान,
वे प्रथम स्नेह,
वे छायामय-सी मदु स्मृतियाँ,
वे चाहे जो कुछ भी हो, सच,
वे ही हैं अपने हित अब तक
आलोक स्रोत,
इस सकल दृश्य मे वह ही है प्रभु ज्योति पूर्ण !
वह उठा रही हमको करती है प्रतिपालित,
उसमे ही है सामर्थ्य कि अपने
इन कोलाहलमय वर्षो को
उस अनत निस्तब्धा मे क्षण भर जैसा
दर्शित करदे।

जागे वे सत्य कि जो अक्षर हो अविनश्वर,
उसको अशाति, पागल प्रयत्न,
नर या कुमार,
या वह समस्त जो हृप शत्रु,
कोई भी जड से नष्ट नही कर सकता औ'
कर कभी नही सकता विलुप्त !

अतएव, भले ही दूर देश मे हो हम, पर
जब शात पवन, वेला हो निर्मल, उस क्षरण हम,
आत्मा अपनी सकते निहार
वह अमर सिंधु
जो है लाया हमको बाहर,
क्षण भर मे ही हम उस तक जा भी सकते हैं,
औ' सकते हैं अवलोक तीर पर
खेल रहे शिशुओ को भी,
औ' अतल गर्जना करती भीम तरगो की
ध्वनि वह गभीर सुन सकते हैं जो अरुकमान
होकर अवाक् !

तो गाओ विहगो, गाओ अब
आनद भरा सा एक गीत !
फिर मृदुल मेमनो को भगने दो चपल खेल,
ज्यो प्रिय मृदग वशी-रव से
उत्फुल्ल प्राण !

हम भी भावो मे शब्द बनेंगे
अब तुमसे
तुम जो करते हो मधुर वेणु वादन विभोर
मधुऋतु के सुखमय हर्षों से एकात्म हुए !
क्या हुआ कि वह आलोक जो कि था कभी दीप्त
छिन गया सदा के लिये लोचनो से मेरे।
यद्यपि अब कुछ भी नही ज्ञात,
सृष्टा ला सकता वह वैभव क्षण
दूर्वा का,
वह शोभनीय गौरव फिर से अब फूलो का,
पर दुख न करूँगा मै कोई,

जो भी बाकी है उमग में
पाऊँगा अपनी शेष शक्ति
वह आदि मातृगा।
जो तब थी औ' सदा रहेगी, वही रह,
मानव पीड़ा से जो फटे
संवेदन से हो हाथ धरें,
औ' मृत्यु मृत्यु को देख सके जो आरपार,
वे वय जो कि दार्शनिक बुद्धि जागृत करते,
गत बन जावें मेरे संबल ।

औ' हे पवन, हे पहाड़ियो हे मयूर कुञ्ज,
यह प्रीति हमारी खंडित हो, ऐसा न करो
कोई विचार !
मैं अपने अन्ततम में करता हूँ अनुभव
वह शक्ति तुम्हारी अनुपमेय
केवल वह सुख है छूट गया
मुझसे कि सहज मैं रहूँ तुम्हारी
छाया में निर्द्वन्द्व बना
आनन्दपूर्ण !

मर्मर करते जो बहते हैं
वे निर्झर मुझको लगते हैं
प्यारे प्यारे ।
तब जब मैं चंचल पग धर कर
चलता था, वे क्षण वही अधिक
अब भाते हैं ।

अब भी मधु माधव का
नूतन दिन अरुणोदय मुझको

अति प्रिय है,

र अस्तप्राय रवि को घेरे दिखते है जो बादल नभ में

वे एक नयन से (लेते है

अब भी अपने गभीर रग)

जिसने मानव की मत्यमानता पर रखी है

सतत दृष्टि,

जागी हैं नूतन जाति और

कितने नूतन भुज विजय प्राप्त,

मानव के मन तू धन्य कि तेरे ही बल पर

हम रहते हैं।

तेरी कोमलता ममता भी हैं धन्य

धन्य तेरे सुख भी, तेरे भय भी,

मुझको तो रे वह अति निकृष्टतम कुसुम जो कि

खिलता भू पर

देता है ऐसे गहन भाव

आँसू जिस तक हैं पहुँच नही सकते परवश,

मैं हो जाता हूँ मग्न किसी अतलात बीच!



उपसंहार

•

मै सहृदयता श्रौ' समनस्कता
का करता सबमे प्रचार
सब के मन का विद्वेष हटा,
जिस भाति गाय अपने बछड़े को करे प्यार
उस भाति आप सब करें एक दूजे से
पुलकित हो दुलार ।

हो पुत्र पिता के व्रत पालन में तत्पर ही
माता की आज्ञा का रखता हो शिरोधाय,
पत्नी अपने पति से बोले
मीठी वाणी अति शांतियुक्त

भाई भाई मे हो न परस्पर तनिक द्वेष,
हो बहिन बहिन के प्रति न तनिक ईर्ष्या वालो,
सब बनें एकमत,

सबका हो हो व्रत समान,
सब मृदुल भद्र वाणी बोलें
मिल कर सहास।

जिस मधुर प्रेम के कारण वे
होते न देव हैं अलग अलग,
आपस में करते नही द्वेष,
मैं वही ज्ञान स्थापित करता हूँ लो देखो
गेह मे तुम्हारे, औ सारे
पुरुषो मे होवे मेलभाव।

सब करो श्रेष्ठता प्राप्त
हृदय से मिलकर सबही रहो साथ
होओ न विलग
रख एक दूसरे को प्रसन्न।

सब एक साथ
मिल कर के भारी बोझे को
ले चलो खींच।
मृदु सम्भाषण कर चलो परस्पर,
औ' अपने अनुरक्त जनो से
मिले रहो।

जल और अन्न की सामग्री होवे समान,
मैं सबको बन्धन एक,
एक से ही करता हूँ युक्त साथ।
जिस भाँति अरे हर ओर लगे रहते हैं
रथ के नाभि देश मे, गति भरते,
वैसे ही सब मिल करो अग्नि की परिचर्या।

मै मम गति वाले सबको ही
अब बना रहा हूँ समनस्क,
जिससे सब पारस्परिक प्रेम से एक भाव हो
एक अग्रणी का
अनुसरण करे समान ।

जिस भाति देव अमृत की रक्षा
करते हैं मिल एक चित्त,
उस भाँति आपकी साँझ भोर
हो श्रेष्ठ समिति रे प्रीतियुक्त !

(सज्ञानसक्त अथर्ववेद, पप्पलाद शाखा ५/१६)

मनुष्य को यह स्नेह कामना ही शाश्वत बन्धुत्व का मूल है । यही सबसे बडा आशीर्वाद है । इसी को हम दुहराते रहे, तो हमारे जीवन मे भी एक नया प्रभात अवश्य होगा ।